RNI No. UTTHIN/2016/71922

# कविकुंभ

मूल्य 20 रुपये

वर्ष 01 | अंक 07 | जून 2017

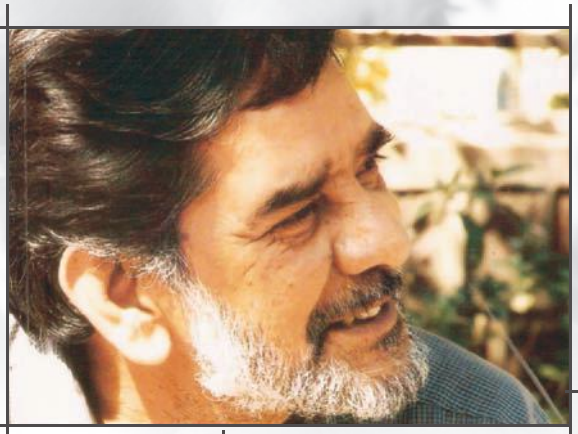

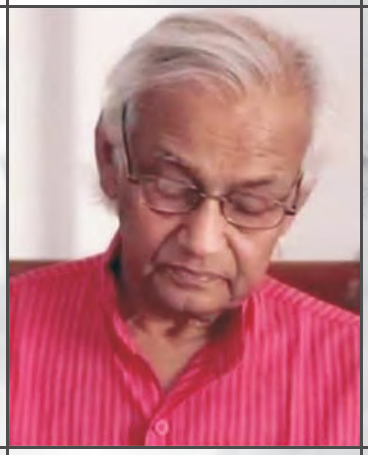

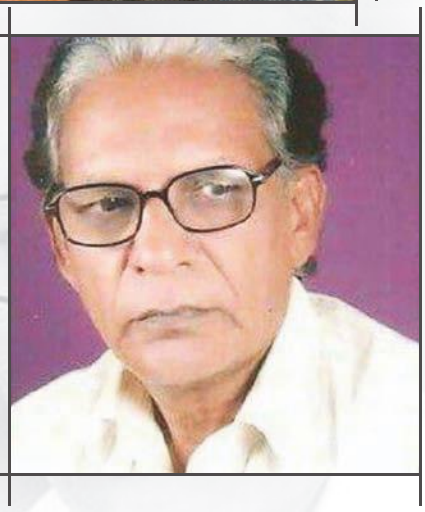

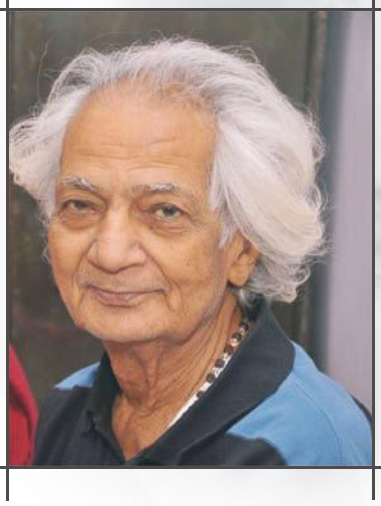

**अक्खड़-फक्कड़ ठाट के कवि आनंद परमानंद पर विशेष, साथ में राजेश जोशी, माहेश्वर तिवारी, नरेश सक्सेना, राम सेंगर के शब्द**

गंगा तीरे संगीत साधना की सुरम्य, अद्भुत तपोभूमि

# देवी संगीत आश्रम, ऋषिकेश

RNI No. UTTHIN/2016/71922

# कविकुंभ

मूल्य 20 रुपए

वर्ष 01 • अंक 07 • जून 2017

दिल्ली • हरियाणा • मप्र • छत्तीसगढ़ • राजस्थान • उप्र • उत्तराखंड • बिहार • झारखंड • प.बंगाल • पंजाब • हिमाचल • जम्मू-कश्मीर • महाराष्ट्र • गुजरात

## शब्द-संपादकीय

## परिचय-यात्रा में 'कविकुंभ'

देश की हिंदी पट्टी में सम्माननीय कवियों, साहित्यकारों, सुधी पाठकों के बीच 'कविकुंभ' की उत्साहजनक स्वीकार्यता ने इन अर्थों में हमारी राह किंचित कठिन कर दी है कि इसका दिनोदिन विस्तार हमसे और अधिक जिम्मेदारी की अपेक्षा कर रहा है। संसाधन सीमित हैं, उम्मीदें अंतहीन। इस बीच देश के कई वरिष्ठ हिंदी कवि एवं साहित्यकार सीधे सम्पर्क कर निरंतर हमारा उत्साह वर्धन कर रहे हैं। उन्हें आशा है कि अपनी विशिष्टता एवं पठनीयता में 'कविकुंभ' सृजन के जरूरी सरोकारों के साथ देश के 18 राज्यों में तेजी से अग्रसर है। विशेष कर 'शब्द-स्वर' में जिन विषयों एवं मुद्दों को गंभीरता से रेखांकित किया जा रहा है, और उसमें जिस स्तर पर हिंदी-उर्दू के कवि-साहित्यकारों की खुले मन से बेलाग, व्यापक सहभागिता मुखर हो रही है, इसे आम पाठक वर्ग की ओर से भी सोद्देश्य सराहा जा रहा है। माना जा रहा है कि पहली बार सामयिक गंभीर साहित्यिक प्रश्नों के लिए 'कविकुंभ' के रूप में जरूरी मंच मिला है। यह भी अपेक्षा है कि बहस का यह सिलसिला बना रहे। इस बीच हम अपने सम्मानित पाठकों से एक प्रसन्नता साझा करना चाहते हैं कि इस अंक से 'कविकुंभ' पूर्ण पंजीकृत आरएनआई नंबर के साथ आपके हाथों में है। यह भी सुखद होगा कि शीघ्र ही पत्रिका ऑनलाइन kavikumbh.com पर भी पढ़ने के लिए उपलब्ध हो सकेगी। बेवसाइट अभी निमार्णाधीन है।

'कविकुंभ' के हर नये अंक के साथ हम हिंदी पट्टी के 14-15 प्रदेशों में ही नहीं, हींदीतर राज्यों में भी सीधे कवि-साहित्यकारों के बीच जा रहे हैं। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य है, 'कविकुंभ' सिर्फ रचनाकारों की ही नहीं, आम हिंदी पाठकों की पत्रिका बने। परिचय-यात्रा की पहल कई एक शीर्ष सृजनधर्मियों के स्नेह-संकेत वश भी अपरिहार्य हुई है। अब तक 'कविकुंभ' गुजरात, राजस्थान, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड की परिचय-यात्राओं का पहला चरण पूरा कर चुकी है। निकट भविष्य में मुख्यतः तीन राज्यों मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और प.बंगाल के कवि-साहित्यकारों के बीच उपस्थिति विचारणीय है। यात्राओं के दौरान ऐसे सुझाव मिले हैं कि हिंदी पट्टी के हर राज्य, शहर में 'कविकुंभ'-मासिक गोष्ठियों का क्रम प्रारंभ किया जाये। अप्रैल-मई संयुक्तांक में पं. गया प्रसाद शुक्ल सनेही पर सविस्तार सामग्री प्रकाशित करने के पीछे हमारा एक उद्देश्य यह भी रहा कि उससे नवोदित ही नहीं, शीर्ष साहित्यकारों के भी प्राथमिक सरोकार में सनेही जी की राह प्रेरक बने। उल्लेखनीय है कि वह आजीवन नवोदित रचनाकारों की पाठशाला की तरह सनेही मंडल की गोष्ठियों में क्लास लेते रहे। इस तरह के प्रयासों के लिए 'कविकुंभ'-मासिक गोष्ठियों को आधार बनाया जा सकता है। ऐसा भी किया जा सकता है कि मासिक गोष्ठी में हर महीने किसी एक नवोदित को अध्यक्ष माह का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित करें और उस गोष्ठी की पूरी खबर सचित्र हमे kavikumbh.com पर प्रेषित कर दिया करें। हम उसे क्रमशः प्रकाशित करने के साथ ही ऐसे नवोदित कवियों को 'कविकुंभ' के वार्षिकोत्सव में सम्मानित भी करना चाहेंगे।

'कविकुंभ' का यह अंक आपको कैसा लगा, कृपया अपने विचारों से हमे अवश्य अवगत कराएं। 'कविकुंभ पत्रालय' में हम उन्हें ससम्मान प्रकाशित करना चाहेंगे। अपने पत्र के साथ अपनी एक फोटो भी अवश्य भेजना न भूलें। तेजी से प्रसार के कारण 'कविकुंभ' के कई एक सहभागियों, पाठकों एवं शुभेच्छुओं तक समय से न पहुंचने की शिकायतें भी मिली हैं। इसमें एक बड़ी अड़चन लचर डाक एवं सरकारी परिवहन व्यवस्थाएं भी हैं। फिर भी हम प्रयासरत हैं कि आपके हाथों तक 'कविकुंभ' समय से पहुंचे। 'कविकुंभ' में प्रकाशनार्थ प्रेषित रचनाएं, यदि स्कैन कॉपी में हों तो कृपया बड़े और स्पष्ट अक्षरों में, ताकि शाब्दिक त्रुटि का अंदेशा न रहे। रचना के साथ अपना संक्षिप्त परिचय, पिनकोड और फोन नंबर सहित पूरा डाक पता एवं अपनी प्रकाशन योग्य फोटो अवश्य प्रेषित करें। 'शब्द-स्वर' के अंतर्गत जारी बहस में भी आपके शब्द साझा हो सकते हैं। समकालीन कवि-मंचीय प्रदूषण पर भी आप बेबाकी से अपने विचार हमे प्रेषित कर सकते हैं।

-रंजीता सिंह

भाषा : हिंदी आवधिकता : मासिक

संपादक
**रंजीता सिंह**

प्रबंध संपादक
**जय प्रकाश त्रिपाठी**

**अंतर्राष्ट्रीय प्रतिनिधि**

अफरोज आलम (कुवैत)
साकिब हुरानी (नेपाल)
फहीम अख्तर (यूनाइटेड किंगडम)

मुद्रक, प्रकाशक, *संपादक रंजीता सिंह द्वारा शिवगंगा प्रिंटिंग प्रेस, 20/1, नेताजी की गली, निकट तिलक रोड, देहरादून से मुद्रित तथा 50, आकाशदीप कॉलोनी, चकराता रोड, देहरादून (उत्तराखंड) 248001 से 'कविकुंभ' से संबंधित विवाद का न्याय-क्षेत्र देहरादून। 'कविकुंभ' में प्रकाशित रचनाओं से संपादक की व्यक्तिगत सहमति आवश्यक नहीं। प्रकाशित रचनाओं के उपयोग से पहले संपादक, लेखक की पूर्व सहमति आवश्यक होगी।

**ऑन लाइन रचनाएं भेजने का पता :**
kavikumbh@gmail.com

डाक पता : एस-172, स्कूल ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली-110092.

फोन : 7250704688 / 7409969078

'कविकुंभ' से संबंधित विवाद का न्याय-क्षेत्र देहरादून। 'कविकुंभ' में प्रकाशित रंजनाओं से संपादक की व्यक्तिगत सहमति आवश्यक नहीं। प्रकाशित रचनाओं के उपयोग से पहले संपादक, लेखक की पूर्व सहमति आवश्यक होगी।

# 8

## राजेश जोशी से कविकुंभ का विशेष शब्द संवाद

* शब्दानुक्रम

* शब्द-स्वर में डॉ.जीवन सिंह, नचिकेता, कृष्ण कुमार, रामचरण राग, भीमसेन सैनी, डॉ.योगेंद्रनाथ शर्मा अरुण एवं डॉ.पृथ्वीनाथ

* शब्द-सुमन में चंद्रसेन विराट, चांद शेरी, बाजपेयी, योगेंद्र वर्मा व्योम आदि

# शब्द-शिखर में इस बार आनंद परमानंद

16

नरेश सक्सेना, रामकुमार कृषक, माहेश्वर तिवारी, गिरीश पंकज, डॉ.कृष्णकुमार बेदिल, डॉ.विनय मिश्र, सुलभ अग्निहोत्री, एसडी ओझा, ब्रिजेंद्र हर्ष, श्रीराम त्रिपाठी, दीक्षित दानकौरी, सुरेश सपन, मोहम्मद हसन, पांडेय

राकेश अचल, राही भोजपुरी, डॉ.हरीश निगम, ओमप्रकाश, राघवेंद्र तिवारी, शहंशाह आलम, अंशु

# जन्मदिन

## बेकल उत्साही (1 जून)

माँ मेरे गूंगे शब्दों को गीतों का अरमान बना दे,
गीत मेरा बन जाये कन्हाई, फिर मुझको रसखान बना दे।

## लीलाधर जगूड़ी (1 जून)

हमेशा नहीं रहते पहाड़ों के छोए,
पर हमेशा रहेंगे वे दिन,
जो तुमने और मैंने एक साथ खोए।

## गंगा प्रसाद विमल (3 जून)

शेष कई बार लगता है,
मैं ही रह गया हूँ अबीता पृष्ठ,
बाकी पृष्ठों पर जम गई है धूल।

## रामप्रसाद बिस्मिल (11 जून)

नौजवानो, जो तबीयत में तुम्हारी खटके।
याद कर लेना कभी हमको भी भूले-भटके।

## विष्णु नागर (14 जून)

आकाश में इतने रंग थे उस दिन,
कि उनका अर्थ समझना मुश्किल था,
कि अपने को व्यर्थ समझना मुश्किल था।

## इब्ने इंशा (15 जून)

देख हमारे माथे पर ये दश्त-ए-तलब की धूल
मियां। हम से है तेरा दर्द का नाता, देख हमें मत
भूल मियां।

## शहरयार (16 जून)

हम पढ़ रहे थे ख़्वाब के पुर्जों को जोड़ के।
आँधी ने ये तिलिस्म भी रख डाला तोड़ के।

## डॉ. शंभुनाथ सिंह (17 जून)

समय की शिला पर मधुर चित्र कितने,
किसी ने बनाए, किसी ने मिटाए।

## विश्वनाथप्रसाद तिवारी (20 जून)

बहुत बुरा वक्त है यह शब्द के लिए,
मैं अपने लाल-लाल शब्दों के साथ,
पहुँचना चाहता हूँ धमनियों के रक्त तक।

## विष्णु प्रभाकर (21 जून)

कहा है महाजनों ने कि मौन ही मुखर है,
कि वामन ही विराट है।

## शैल चतुर्वेदी (29 जून)

हमारे देश का प्रजातंत्र वह तंत्र है,
जिसमें हर बिमारी स्वतंत्र है।

## नागार्जुन (30 जून)

नए गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है,
यह विशाल भूखंड आज जो दमक रहा है,
मेरी भी आभा है इसमें।

# पुण्यतिथि

## वीरेंद्र मिश्र (1 जून)

खिडकी मैं बैठा जो गीत है पुराना।
देख रहा पत्रों का उड़ रहा खजाना।

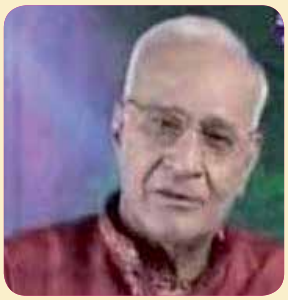

## ओम प्रकाश आदित्य (7 जून)

छंद को बिगाड़ो मत, गंध को उजाड़ो मत,
कविता-लता के ये सुमन झर जाएंगे।

## बलबीर सिंह रंग (8 जून)

हमने जो भोगा सो गाया।
अकथनीयता को दी वाणी, वाणी को भाषा कल्याणी,
कलम कमण्डल लिये हाथ में, दर-दर अलख जगाया।

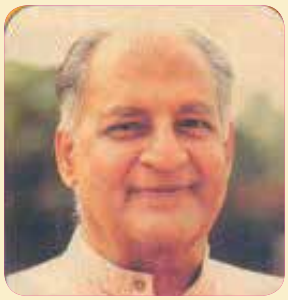

## प्रभाकर माचवे (17 जून)

कविता क्या है? कहते हैं जीवन
का दर्शन है - आलोचन।

## जगन्नाथदास रत्नाकर (21 जून)

दुख-सुख ग्रीषम और सिसिर न ब्यापै जिन्हें,
छापै छाप एकै हिये ब्रह्म-ज्ञान साने मैं ।

## केदारनाथ अग्रवाल (22 जून)

काल पड़ा है बँधा ताल के श्याम सलिल में।
ताब नहीं रह गई देश के अनल-अनिल में।

## भारतभूषण अग्रवाल (23 जून)

जो लिख चुका, वह सब मिथ्या है, उसे मत गहो!
जो लिखा नहीं गया, घुमड़कर भीतर ही रहा,
वही सच है, जो मैं देना चाहता हूँ!

## रमानाथ अवस्थी (29 जून)

मेरी रचना के अर्थ बहुत से हैं,
जो भी तुमसे लग जाए, लगा लेना।

## परिचय-संक्षेप

प्रकाशित कृतियां - वाणी चालीसा (काव्य), सड़क पर जिंदगी (गजल संग्रह), ज्योतिष्मती सरस्वती (गद्य-पद्य संकलन)।

प्रकाशनाधीन - कोई सच फिर मरा है क्या, भारशिव नागवंश का इतिहास, मारकुंडी (निबंध संग्रह), सामली (उपन्यास)।

हिंदी, अंग्रेजी, बांग्ला, संस्कृत भाषाविद।

राष्ट्रपति स्व.गुलजारीलाल नंदा, स्व.बीबी गिरि, स्व.इंदिरा गांधी, चंद्रशेखर, जयप्रकाश नारायण, हजारी प्रसाद द्विवेदी, संपूणार्नंद, सुमित्रानंदन पंत, जानकीबल्लभ शास्त्री, नामवर सिंह आदि का सान्निध्य।

फिराक गोरखपुरी, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, श्यामनारायण पांडेय आदि के साथ कविता पाठ। दूरदर्शन-आकाशवाणी से रचनाएं प्रसारित।

विद्यानिवास मिश्र सम्मान, काव्यगंगा सम्मान, अरण्य आदिवासी सेवा सम्मान, भैयाजी बनारसी सम्मान आदि से समादृत।

संपर्क - बीडीए फ्लैट नं. 29, (थर्ड फ्लोर), चेतमणि चौराही, रवींद्रपुरी, वाराणसी (उ.प्र.) - 221002. मोबाइल नंबर - 7522095868.

मुझको सहलाती है पीड़ा अपने बेटे की तरह

# अक्खड़-फक्कड़ ठाट के कवि आनंद परमानंद

**वाराणसी के अक्खड़-फक्कड़ ठाट के कवि आनंद परमानंद से 'कविकुंभ' की मुलाकात हुई अलवर (राजस्थान) के एक पुस्तक प्रकाशनोत्सव में। एक जमाने में धूमिल, त्रिलोचन, डॉ. शंभुनाथ सिंह, अदम गोंडवी के साथ विचरा करते थे। लोग उम्र के वसंत देखते हैं, परमानंद कहते हैं - अब तक जिंदगी के लगभग आठ दहाई पतझर देख चुका। पुरस्कार पाने की गजब लालसा व्यापी हुई है साहित्यकारों में। राजनेताओं के आगे-पीछे सरपट मारते रहते हैं। उनकी समाजविरोधी करनी पर चुप्पी साध लेंगे, सांप सूंघ जाता है। और झूठी कथनी पर बेशर्म तालियां पीटते हैं। इससे सच्चे, साधक साहित्यकारों को पुरस्कार नहीं मिल पा रहा है। भयानक रूप से स्थितियां बदली हैं। इस बदलाव में साहित्यकार भी कम जिम्मेदार नहीं। साहित्य के इस बेढंगे दौर में कोई किसी को पूछने के लिए तैयार नहीं। सब अपने लिए व्याकुल, जी-मर रहे हैं, आगे जाने क्या होने वाला है।**

बनारस के बुजुर्ग कवि आनंद परमानंद से 'कविकुंभ' की मुलाकात हुई अलवर (राजस्थान) के एक पुस्तक प्रकाशनोत्सव में। उनके साथ बीते दो दिनों के दौरान हिंदी साहित्य के सुपरिचित आलोचक डॉ. जीवन सिंह, जाने-माने कवि एवं 'अलाव' के संपादक रामकुमार कृषक, हिंदी गजल के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. विनय मिश्र, गजलकार मधुवेश आदि भी। सबमें परमानंद सबसे अलग, जैसे युग साथ-साथ चल रहा हो उनमें, उनके साथ-साथ, और उनसे होते हुए सबके साथ। ऐसा हो भी क्यों नहीं, जिस कवि पर त्रिलोचन कविता लिखें, उसकी वह संगत कितनी अनमोल, सुध-बुध सोख लेने वाली रही, हम साथ रहकर ही जान सके। जैसे एक विलक्षण अनुभव से गुजरते हुए। उनके साथ अनायास एक ऐसी विराटता का बोध होता रहा, जो हमारे समय में विरले ही कवि-साहित्यकारों के साथ संभव हो पाता है। जाने कितने तरह के बोझ उनके मन पर लदे हुए थे। उनके अंदर क्या-कुछ घट रहा होता था, जो उनकी चुप्पियों से शब्दभर भी फूट नहीं पाता था। जैसे सड़क के आदमी की भीड़ में एकांतिक साधना। भीतर आग भरी हुई थी और कई-कई सोतों वाले झरने भी।

वह कभी घंटों स्वयं में गुम, कभी अचानक धारा प्रवाह, राजनीति से साहित्य तक, डॉ.लोहिया से डॉ. शंभुनाथ सिंह तक, गीत-गजल से नवगीत तक, अंतहीन, प्रसंगेतर-प्रसंगेतर। साथ का हरएक चुप्पी साधे, विमुग्ध श्रोताभर जैसे। उनकी प्रकांडता का एक आश्चर्यजनक पक्ष थीं, उनमें जीवंत अथाह स्मृतियां। जब तक हम साथ रहे, सोचते रहे कि ये आदमी है या कोई मास्टर कम्प्यूटर। भला किसी एक आदमी को इतनी बातें अक्षरशः कैसे याद रह सकती हैं, जबकि उम्र अस्सी के पार, स्मृतिभ्रंश की आशंकाओं से भरी रहती है। बीच-बीच में वह 'कविकुंभ' के पन्ने पलट लेते। अगल-बगल बैठे सुपरिचितों से किन्हीं जानी-अनजानी बातों पर मुखातिब हो लेते। हिंदी गजल और उर्दू गजल के तर्क-वितर्क में मशगूल हो जाते। फिर एकदम खामोश। शून्य में आंखें टिकाए हुए। मन-ही-मन जाने कहां-कहां जाकर विचरने लगते। कोई टोके, तभी तंद्रा भंग। जैसे अभी-अभी प्रकटे हों हमारे बीच। साथ आए उनके पुत्र अव्यय से पता चला कि घर में भी वह इसी तरह अक्सर गुम हो जाया करते हैं। बनारसी कवि-लेखकों से भी उनकी कोई खास नहीं बनती।

इस दौरान परमानंद ने हमसे अपने कवि-सम्मेलनों के दिनों के कई-एक रोचक प्रसंग साझा किए। कोई संस्मरण डॉ. श्याम तिवारी का, तो कोई आपात काल का, कोई घर-गृहस्थी के झमेलों का, तो कोई हिंदी साहित्य में अपनी उपेक्षा के अनेकशः दंश और उससे जुड़ी वजहों का। सबसे रोचक यादगार रही क्रांतिकारी कवि शलभ श्रीराम सिंह की।

आनंद परमानंद बताते हैं कि शलभ अपने जिस निराले अंदाज के कवि थे, उनका निजी जीवन भी उतना ही अनोखा था। बाएं-दाएं पिस्तौलधारी अंगरक्षक दो मुस्टंड। वह एक दफे हमे कवि-सम्मेलन में चलने के लिए न्यौत लिए। उनके ठिकाने पर पहुंचे तो हम कवियों में से ही उन्होंने किसी के पैसे से चीनी मंगा ली, किसी से चाय पत्ती। किसी से चावल-दाल-सब्जी मंगा ली तो लगे हाथ बारी-बारी दो सज्जन वाहन मुहैया कराने का फरमान सिर-माथे लेते हुए लौट गए। हम अचरज से उनका मुंह ताकते रहे कि ये तो खूब रही। खुद

की जेब में धेला नहीं, चाय-चीनी तक हमारे पैसे से, और कवि-सम्मेलन में कविता पढ़ने के लिए बुला लिया। राम जाने चवन्नी भी मिलेगी कि नहीं। सो, आखिरकार हुआ भी वही, जो अंदेशे में था। मंच पर आयोजक से ऐसी चोंच लड़ी कि पिनक में उनके साथ हम सबको बैरंग लौटना पड़ा।

इस दौरान उन्होंने सुदामा पांडेय 'धूमिल' के साथ बीते वक्त को भी चचाओं में साझा किया। उन्हीं में एक प्रसंग था, धूमिल ने किसी बात पर अपने पड़ोसी का सिर फोड़ दिया। आनंद परमानंद बताते हैं, घटना के बाद थाने चलने के लिए मुझसे तुरंत साइकिल का इंतजाम करने की फरमाइश की ताकि पता किया जा सके कि प्रतिद्वंद्वी ने रपट तो नहीं लिखा दी है। धूमिल की प्रशंसा करते हुए वह कहते हैं, वह अपनी जुबान के पक्के, विचार के कट्टर थे। मंच पर हैं, कुछ अटपटा लगा तो एक झटके में उठकर चल दिए। किसी की एक नहीं सुनते थे। कमोबेश निराला जैसे।

जिंदगी की हद कहां तक है, जानते हुए, तनी रीढ़ से ललकारते आठ दशक पार कर गए ठाट के कद वाले इस कवि के शब्दों की लपट किसी भी कमजोर त्वचा वाले शब्द-बटोही को झुलसा सकती है। मन से तरल इतने कि गोष्ठियों से मंचों तक कुछ उसी तरह शब्दों के साथ-साथ आंखों से बूंदें अनायास छलकती रहती हैं, जैसेकि कभी कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध कक्षा में अपने छात्रों को पढ़ाते हुए भावुक हो जाया करते थे। बुढ़ौती के कठिन-कठोर ठीये पर आज भी स्वभाव में बच्चों-सी हंसी-ठिठोली भरे अंदाज के आनंद परमानंद कहते हैं कि- 'जिंदगी में जिस तरह हो, संतुलन रक्खा करो, एक अच्छे आदमी का आचरण रक्खा करो, हो अगर अच्छे तो अच्छा और होने के लिए, गैर की अच्छाइयों का संकलन रक्खा करो।' अपने आंसुओं के स्वाद पर स्वयं के शब्द कुछ इस तरह होते हैं- 'मुझको सहलाती है पीड़ा अपने बेटे की तरह, जब कमी होती है अक्सर प्यार में, रोता हूँ मैं।'

आनंद परमानंद की कविता ही नहीं, इतिहास और पुरातत्व में भी गहरी अभिरुचि है। 'सड़क पर जिन्दगी' उनका चर्चित गजल संग्रह है। जब भी उनकी रगों पर उंगलियां रखिए, दर्द से तिलमिलाते हुए भी सन्धान शिकारी की तरह दुश्मन-लक्ष्य पर झपट पड़ते हैं, व्यवस्था की एक-एक बखिया उधेड़ते हुए स्वतंत्रता संग्राम के इतने दशक बाद भी देश के आम आदमी का दुख और आक्रोश उनके शब्दों में धधकने लगता है- 'जिन्दगी रख सम्भाल कर साथी, अब न कोई मलाल कर साथी, जिनके घर रौशनी नहीं पहुँची, उन गरीबों का ख्याल कर साथी।'

वाराणसी के ग्राम धानापुर (परियरा), राजा तालाब में 01 मई सन 1939 को पुरुषोत्तम सिंह के घर जनमे आनंद परमानंद आज भी गीत, गजलों के अपने रंग-ढंग के अनूठे कवि हैं। मिजाज में फक्कड़ी, बोल में विचारों के प्रति जितने कत्तई अडिग, कोमल भावों में मन-प्राण के उतने ही शहदीले - 'सघन कुंज की ओ लता-वल्लरी सी, सुवासित रहो भोर की पंखुरी सी, मैं आसावरी राग में गा रहा हूँ, तू बजती रहो रात भर बांसुरी सी।' और बेटियां उनके शब्दों में मुखर होती हैं, कई अध्यायों वाले घर-परिवारों के महाकाव्य की तरह, जिसमें अनुभवों की सघन पीड़ा भी है और वात्सल्य का अदभुत सामंजस्य भी- 'पुत्र जिनके श्लोक जैसे, बेटियां होतीं ऋचा, वे पिता-माता लगे वैदिक कथाओं की तरह, प्यार तरुवर को धराशायी न करना आंधियों, हम लिपटकर जिनसे रहते हैं लताओं की तरह।'

आनंद परमानंद अपनों के बीच अंतरंग सुख-दुख को भी खुलकर साझा करते हैं, पूरी तरह मुखर हो उठते हैं, राज्य-समाज-घर-साहित्य से अपने जीवन तक की एक-एक व्यथा बेलौस बांचने लगते हैं- 'क्या कहूँ, किन-किन परिस्थितियों में कब होता हूँ मैं, आप यह समझें कि हल के बैल से जोता हूं मैं, खो न जाऊँ भीड़ में छोटी चवन्नी की तरह, रोज खुद को वक़्त की इस जेब में टोता हूँ मैं।

हिंदी गजल के सिरमौर आनंद परमानंद 'कविकुंभ' के पन्नों पर एक ऐसे यश-पुरुष-से हैं, जिन्हें उनकी रचनाओं के अनुपात में न कभी मीडिया ने नोटिस किया, न कवि-साहित्यकारों ने। वह आजीवन खुद के खिलाफ लड़ते रहे। लोग उम्र के वसंत देखते हैं, आनंद परमानंद कहते हैं - अब तक जिंदगी के लगभग आठ दहाई पतझर देख चुका। आज तो साहित्य के बेढंगे दौर में कोई किसी को पूछने के लिए तैयार नहीं है। सब अपने लिए व्याकुल हैं। चिंतित हैं। हम एक-दूसरे की आलोचना-समालोचना करते हैं और उससे बहुत कुछ सीखने को मिलता है। समाज को संस्कारित करने वाले साहित्य का राजनीति और समाज ने ही स्वरूप बिगाड़ दिया है। साहित्यकार वर्गों में बंट गए हैं। राजनीतिक विचारधाराएं साहित्यकारों पर हावी हो गई हैं। राजनीतिक रूप से बंटे साहित्यकार आपस में ही एक दूसरे को पीछे धकेलने में लगे हैं।

उनका मानना है कि आज निर्भीकता से अपनी बात रखने वाले साहित्यकार कम बचे हैं। राजनीति और समाज की कमियों का अहसास कराने वाले साहित्यकारों को दरकिनार कर दिया जा रहा है। साहित्य का राजनीतीकरण चिंताजनक है। पुरस्कार पाने की लालसा में साहित्यकार राजनेताओं के पीछे दौड़ लगाने लगते हैं, उनकी समाजविरोधी करनी पर चुप्पी साधे रहते हैं। कई एक तो ऐसे भी दिखते हैं, जो उनकी झूठी कथनी पर बेशर्म तालियां पीटने से भी बाज नहीं आते। इससे सचमुच के साधक साहित्यकारों को पुरस्कार नहीं मिल पा रहा है। ऐसे में साहित्य समाज को दिशा कैसे दे, चिंताजनक लगता है। ऐसा जमाना भी उन्होंने देखा है, जब संस्कार, संस्कृति से जोड़कर रखने के लिए मंचों से साहित्यकारों की आवाज गूंजती थी। अब स्थितियां बदल गई हैं। वर्तमान में साहित्य की दशा को अच्छा नहीं कहा जा सकता है। इसके लिए अन्य सभी कारणों के साथ साहित्यकार भी उतने ही जिम्मेदार हैं।

# सड़कों पर घुमंतू आवारागर्द

— श्रीकृष्ण तिवारी

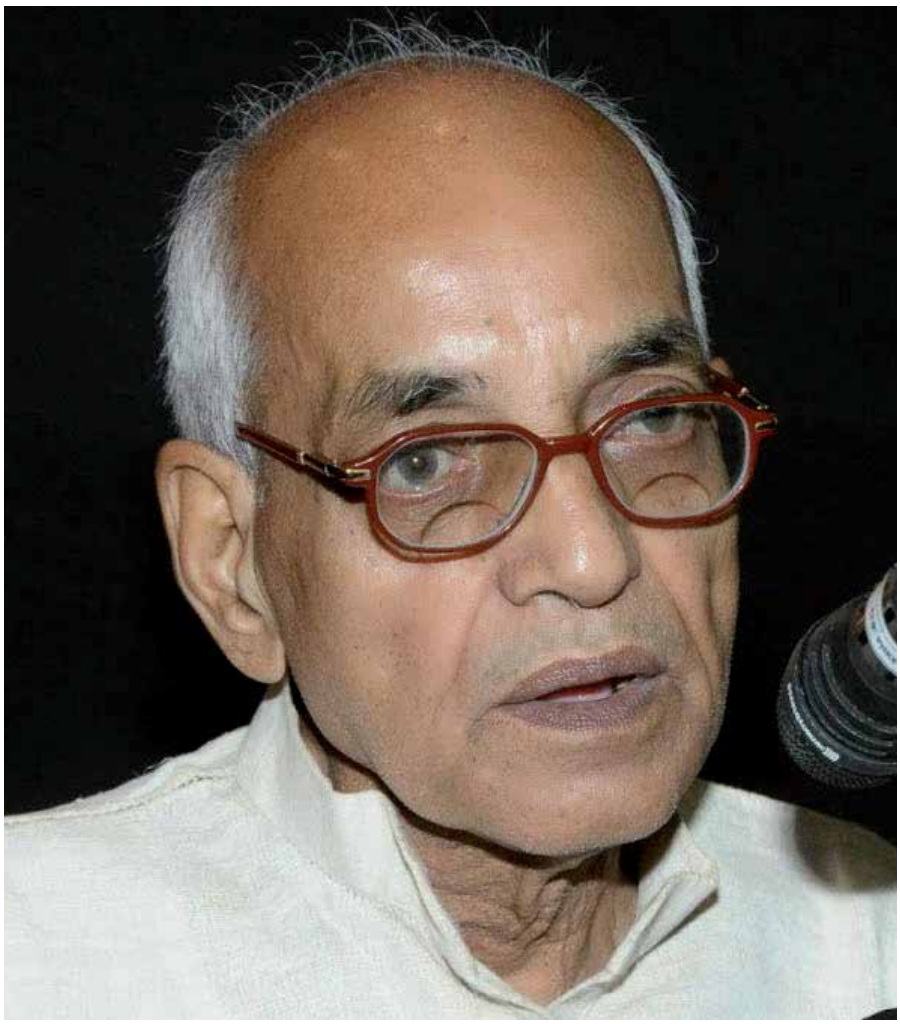

आनंद परमानंद दुष्यंत परंपरा के सशक्त गजलकार हैं। इनकी कम-से-कम 50 गजलें मैंने सुनी होंगी, जो प्रायः मंचों पर अपना प्रभाव स्थापित करती रही हैं। ...वह आदमी की तरह जिंदगी काटते हैं। आज तो यह आशंका जन्म लेने लगी है कि सही आदमी सड़क पर भी रह पाएगा अथवा नहीं। आखिर वह जाए भी तो कहां जाए। उनकी गजलें पढ़कर मुझे प्रसन्नता है कि कम से कम उन्होंने नकली और बनावटी बातें नहीं कही हैं। आनंद परमानंद 25 वर्षों तक सोनभद्र (उत्तर प्रदेश) के आदिवासी क्षेत्र में अध्यापक रहे हैं। इन्होंने आदिवासियों, घुमंतू कबीलों, नट-कंजड़ और मुसहरों के जीवन को नजदीक से देखा है। इसलिए जहां भी इन्होंने इन पर शेर कहे हैं, वे अपना अलग अस्तित्व रखते हैं- 'चलो जिंदगी से मैं परिचय करा दूं, हैं पेड़ों तले इन मुसहरों को देखो, दही-दूध क्या, रोटियां तक नहीं हैं, गरीबों के खाली सिकहरों को देखो।'

आनंद परमानंद की गजलों के विषय भूख, गरीबी, बेरोजगारी, दलित, मजदूर, आदिवासी और किसान हैं। दहेज, लड़कियां, नारी, दंगे-फसाद जैसी समस्याएं हैं। उनकी गजल के दो शेर देखें- भले हों व्यास तुलसीदास, ये रैदास, वो कबिरा, जिन्हें दुनिया पढ़ा करती है, सड़कों का ही चिंतन है, सड़क की धूल उड़ती है तो वह आकाश छूती है, सड़क की सोच ऊंची है, सड़क का एक दर्शन है। इस कवि में, जिसे, चिंतनशील फ्रिक्रोपन कहते हैं, गजलों में अंत्यानुप्रास की नवीनता प्रशंसनीय है, जहां हिंदी भाषा की सामर्थ्य और कहन की शिष्टता-शालीनता दिखाई पड़ती है। एक घुमंतू और आवारागर्द आदमी की तरह रात-बिरात, सड़क-गली से गुजरते इस कवि को मैंने खूब देखा-परखा है, जिसे इस कवि ने स्वयं भी चित्रित किया है। मैं इस मतले का प्रशंसक हूं- जो भी मेरे है पास, वो आवारगी है, इतना हिसाब मेरी जिंदगी का है।

समाजवादी विचारधारा से पूरी तरह प्रभावित आनंद परमानंद का सामाजिक विषमताओं से पाला पड़ता रहता है, जिससे विचलित न होना इनकी प्रकृति की मूल विशेषता है। ये संघर्षों के कवि के रूप में जाने जाते हैं। संघर्ष वियक्ति का निर्माण करता है। ऐसा कवि ही समाज को प्रेरणा देता है, उत्साहवर्धन करता है, विचारों के नये पथ-निर्माण की ओर इंगित करता है, जमाने को बदलने में सक्रिय भागीदारी करता है और तब वह एक चुनौती के रूप में खड़ा होता है। ....हिंदी गजलों के क्षेत्र में सम्प्रति ये शीर्ष और चर्चित रचकारों में एक हैं। समकालीन सोच के साथ विषय वैविध्य, चिंतन और अभिव्यक्ति की सादगी इनकी पहचान है। जंगल के प्रति बड़ी निष्ठा है कवि के अभ्यंतर में। ... आनंद परमानंद ने रवायती गजलों को आत्मसात करते हुए भी इन्हें आज के संदर्भों से जोड़कर एक नया आयाम दिया है। (प्रसिद्ध नवगीतकार स्वर्गीय श्रीकृष्ण तिवारी के ये शब्द कभी 'सड़क पर जिंदगी' संकलन में प्रकाशित हुए थे।)

## स्वयं त्रिलोचन ने जिस पर कविता लिखी

# एक अलक्षित कवि का दृष्टि-पथ

डॉ. विनय मिश्र

आनंद परमानंद को कम लोग जानते हैं, और जो जानते हैं, वे भी कम ही जानते हैं। वह एक महत्वपूर्ण कवि हैं। उनके पास रचना की एक समर्थ दृष्टि और भाषा की एक खास बनक है। बनारस उनका ठिकाना है और यह शहर भी ऐसा है कि अच्छे-अच्छों को भी सिर पर चढ़ाने की इसकी कभी आदत नहीं रही तो फिर कहाँ ठहरते हैं परमानंद। आप अपनी हवेली में रहिए या फुटपाथ पर, गली में रहिए या घाट पर, सीढ़ी पर रहिए या छत पर, यह शहर सबकी हेकड़ी निकाल देता है।

मैं उनको करीब से जानता हूँ। बनारस की गलियों और चौराहों पर गुणी लोग परमानंद का बखान अपनी-अपनी रुचि में चूना-कत्था-जर्दा और ढेर सारा निंदा रस मिलाकर करते हर समय मिल जायेंगे और अपने ही ताव में परमानंद का स्वाभिमान ऐसे-ऐसों को न तब गाँठता था, जब उनके पास कुछ था, और न अब गाँठता है, जब उनके पास कुछ नहीं है। फिर भी सारा शहर आज उनके लिए उनके ठेंगे पर है, तो बात क्या है?

बनारस की एक समृद्ध साहित्य परंपरा का संस्कार और सान्निध्य उन्हें मिला है। त्रिलोचन, शंभुनाथ सिंह, रूपनारायण त्रिपाठी, ठाकुर प्रसाद सिंह, विकल साकेती, पारस भ्रमर, शलभ श्रीराम सिंह, श्रीकृष्ण तिवारी और अदम गोंडवी जैसे बड़े कवियों का संग साथ जिसे मिला हो और जिससे प्रभावित होकर स्वयं त्रिलोचन ने जिस पर कविता लिखी हो, उसका उपेक्षित व्यक्तित्व कुछ तुनकमिजाज, कुछ अक्खड़ और कुछ अबूझ हो जाए तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

बनारस की हिन्दी गजल के प्रतिनिधि गजलकार ही नहीं, एक वरिष्ठ गीतकार, लेखक व संस्कृतिकर्मी भी हैं परमानंद। उनकी वैचारिकी की पृष्ठभूमि अगर लोहियावादी है तो उनकी संवेदना की जमीन उनके जीवन में व्याप्त अभावों और परिस्थितियों से संघर्ष की उपज है। आज भी यह घूमंतु मन अपनी आवारगी और छटपटाहट की दास्तान लिए काशी की गलियों में अहर्निश दौड़ता भागता है, पर सुने कौन? और इसलिए आज भी अपने चिंतन की कलम को आक्रोश की स्याही में डुबोकर जब परमानंद अपनी गजल कहते हैं तो हिन्दी भाषा का जैसे समस्त काव्य वैभव जाग उठता है।

उनकी गजलों में होना बनारस की एक सांस्कृतिक पदयात्रा में शामिल होना है। वे बनारस की साझा संस्कृति, सोच और सरोकारों के कवि हैं। उनकी गजलों में इंसानियत की तरफदारी शायद इसलिए है कि उनकी जिंदगी का हिसाब बहुत खुला हुआ है और इसलिए उनकी गजलों में अपने समय की बेधड़क व्यंजना मौजूद है। उनकी गजलों से गुजरते हुए एक ऐसे झूलते हुए पुल पर चलने का एहसास होता है, जिसके नीचे हजारों वर्षों की भारतीय संस्कृति की वेगवती नदी प्रवाहित हो रही है और जहाँ सामने के दृश्य प्रफुल्लित करते हैं तो नदी की धार और पुल का कंपन मन को विचलित भी करता है। आज की गजलों में जहाँ अपने समय के सवालों और सरोकारों की बात होती है, परमानंद गजलें अपने समय की चिंताओं का एक जाग्रत सफरनामा हैं, जिससे गुजरते हुए उनकी निजता में अन्तर्हित व्यापक युग बोध का पता चलता है। साथ ही साधारण सा दिखने वाला यह कवि कितना असाधारण है, इसकी भी खबर लगती है।

हिन्दी गजल के समकालीन परिदृश्य को समझने के लिए आनंद परमानंद की गजलों से दो-चार होना जरूरी है। गजल कहने का उनका अपना ही अंदाज है। उनकी काव्य-भाषा और भाव-भंगिमा पूर्णतः मौलिक है। उनके पास अपने जीवनानुभवों का एक समृद्ध कोश है तो अपने इतिहासबोध और अपने समय की राजनीतिक सरणियों का गहरा परिचय भी। अपने समय की नब्ज पर उनकी सीधी पकड़ है और उनकी भाषा किसी बनावटीपने का शिकार नहीं है।

उनकी गजलों की बिम्ब योजना अपने सामयिक सन्दर्भों की ज्वलन्त झांकी प्रस्तुत करने में सक्षम है। उनकी संवेदनाओं का तीव्र आवेग अपने समय के संशयी परिदृश्य को एक हौसला भी देता है तो कहीं इस अँधेरे में उम्मीद की एक किरण बनकर साहस भी बँधाता है। उनकी गजलों में आधुनिकता की जटिल संवेदनाओं का भी सहजता से चित्रण हुआ है, जो उनके कवि सामर्थ्य का कमाल है। विकास के प्रलोभनों और पूँजीवादी शोषण के औजारों और उनके हमलों के प्रति वे पूरी तरह सचेत हैं। और तभी वे अपनी गजलों में इस अमानवीय व्यवस्था का प्रतिकार पूरे दमखम से करते हैं। विसंगतियों से असहमति और निरंकुशता का प्रतिरोध उनके रचना कर्म की वो संजीवनी है, जिसे पीकर उनका कवि मन अमरता की ओर अग्रसर होता है। परमानंद जी की गजलों में एक गजब की बेचैनी है बल्कि कहना होगा कि कई तरह की बेचैनियों की एक अन्तहीन श्रृंखला है। ये गजलें जितनी आत्मपरक हैं, उतनी ही सामाजिक मूल्यों से आबद्ध भी। समकालीन गजल की भावभूमि निर्धारित करने में इसी भाव भूमि की शायद सबसे महत्वपूर्ण भूमिका बनती है। परमानंद की गजलों का आस्वाद कुछ ऐसी ही सधी हुई, तल्ख, मारक और भरपूर व्यंजना शक्ति का आस्वाद है, जिसका आधार उनकी जनपक्षधरता है और जिसकी प्रतिबद्धता आमजन के आर्तनाद को स्वर देना है।

(संपर्कः 8209838889)

# यादों में एक सारस्वत अतीत

— डॉ. राम विनय सिंह

तरलतरंगा समंगा गंगा की उच्छल जलधारा-सी किलकती कल्लोलिनी के कमनीय तट पर खड़ा एक निस्पृह काव्यपुरुष। निर्झर के मुखर स्वर से पुकार लेने की सामर्थ्य होते हुए भी अनाममय मौन। गांभीर्य से ओतप्रोत होकर भी मंदस्मिति से मुग्ध कर लेने वाला एक श्यामल आभासिक आकर्षण। चिंतन की चिरंतन चेतना से संपन्न होते हुए भी नितांत निरहंकार व्यवहार साकार और इससे इतर भी बहुत कुछ, जो एक सहज सृजनशील योगी के लिए अपेक्षित। नाम है आनंद परमानंद। अकस्मात एक वार्ता-प्रसंग वश कम-अज-कम बीस वर्ष पूर्व की आत्मीय स्मृतियां जाग्रत हो गईं। विद्यार्थी जीवन में काशी वास के समय विभिन्न साहित्यिक विभूतियों के सान्निध्य का लाभ मुझे यथासमय प्राप्त हुआ है। तत्कालीन संस्कत-हिंदी-उर्दू-भोजपुरी कवियों का स्नेहाशीष पाकर तब भी मैं अभिषिक्त होता रहा था। आदरणीय आनंद परमानंद के साथ के वे पल भी उसी सारस्वत अतीत के अंश हैं।

कवि एवं शायर आनंद मेरे अभिन्न रहे हैं। अनेक वर्षों तक हम काव्यानंद के सहयात्री रहे हैं। बेशक सन 2000 के बाद मेरा-उनका सम्पर्क टूट-सा गया। उस जमाने में मोबाइल जैसी चीजें इतनी सुलभ नहीं थी कि बिखरे हुए मनकों को आसानी से जोड़ पाता। और परिणाम हुआ कि काशी छूटते ही आनंद छूट गए। किंतु मन में सदा बने रहे। मेरी उनकी पहली मुलाकात कदाचित किसी काव्य संगोष्ठी में ही हुई, जो समय के साथ प्रगाढ़ होती गई। शोध छात्र के रूप में जब मैं नगवा, वाराणसी में रहता था, तब आनंद अक्सर मेरे निवास पर आते थे। खूब काव्यचर्चा करते थे हम। गीत-गजल सभी विधाओं पर विमर्श भी होता। धीरे-धीरे तो यह क्रम ऐसा चला कि वे जब भी गांव से वाराणसी आते तो मेरे पास ही रुकते और काव्यानंद का वातावरण बन जाता।

आनंद गजल के महारथी हैं। न केवल भाव-नावीन्य प्रत्युत शिल्प नावीन्य में उनका कौशल विलक्षण है। वे रदीफ-काफिया के संविधान में सदा सजग रहते हैं और सर्वथा प्रत्यग्र सृजन के प्रति तत्पर रहते हैं। उनके व्यक्तित्व की गंभीरता उनके काव्य में भी स्फुट परिलक्षित है। उनका स्वाभिमानी व्यक्तित्व साहित्य के लिए निधि है। अपने सृजन के प्रारंभिक काल में वे खूब सक्रिय रहे, किंतु कालांतर में पारिवारिक परिस्थितियों के कारण कुछ अलग-थलग हो गए। निःसंदेह उनके सृजन के अनुरूप उन्हें साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकी। इस प्रसंग में बातचीत करते हुए उन्होंने एक ऐसी घटना बताई जो आध्यात्मिक सत्ता से जुड़ी है। जीवन के किसी मोड़ पर एक आध्यात्मिक मनीषा के शीर्ष पुरुष की सकोप दृष्टि का दंड उन्हें झेलना पड़ा। इस विषय को ज्यादा विस्तार देना मैं उचित नहीं समझता क्योंकि ये प्रसंग हमारे निजी संवाद के रूप में है तथापि संकेत देना उचित समझता हूं कि अदलपुरा के पास स्वामी सीताराम सरस्वती (जिन्हें 'मास्टर बाबा' के नाम से वहां लोग जानते थे) का आश्रम है- अध्यात्म विद्यालय। एक अलौकिक साधना स्थान सिद्ध सारस्वत पीठ है। मैं भी उस आश्रम से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध हूं आज भी।

तब, जब स्वामी जी सशरीर थे, आनंद परमानंद भी वहां निरंतर आते-जाते थे। स्वामी जी का स्नेह था उन पर। किंतु एक ऐसी घटना हुई कभी, जिसने आनंद परमानंद को स्वामी जी के कोप का भाजन होना पड़ा। कहते हैं कि उन्होंने आनंद परमानंद को कुछ दंडात्मक वचन कहे। फिर क्या था, आनंद अकस्मात ही शप्त हो चुके थे। उनकी काव्यमय यशस्विता वहीं से थम गई। कालांतर में स्वामी जी का क्रोध शांत हो गया किंतु तब तक आनंद परमानंद को दंड मिल चुका था। खैर, यह सब प्रारब्ध-चक्र का अंश है। आज आनंद परमानंद स्वस्थ-सकुशल हैं।

(संपर्क : 8979170174)

आनंद परमानंद के शब्द

## उनकी खातिर बौखलाता हूं तो गीतों के लिए

*शब्द के जोखिम उठाता हूं, तो गीतों के लिए।*
*दर्द से रिश्ते निभाता हूं, तो गीतों के लिए।*
*गूंगी पीड़ा को नया शब्दार्थ देने के लिए,*
*भीड़ में भी छटपटाता हूं, तो गीतों के लिए।*
*सोचकर खेतों में ये प्रतिबद्धताएं रोपकर,*
*नये सम्बोधन उगाता हूं, तो गीतों के लिए।*
*माथ पर उंगली धरे सच्चाइयों के द्वार की,*
*सांकलें जब खटखटाता हूं, तो गीतों के लिए।*
*जिनके चेहरों पर हंसी फिर लौटकर आयी नहीं,*
*उनकी खातिर बौखलाता हूं, तो गीतों के लिए।*
*ओढ़कर कुहरे पड़ी चुपचाप ठंडी रात में,*
*पत्तियों सा खड़खड़ाता हूं, तो गीतों के लिए।*
*मिल गया मौसम सड़क पर जब असभ्यों की तरह,*
*वक्त को कुछ बड़बड़ाता हूं, तो गीतों के लिए।*

## इसी से भागते हैं लोग गालिब, मीर के पीछे

कड़ी चिल्लाहटें क्यूं हैं इसी तस्वीर के पीछे।
मरा सच है कहीं फिर क्या उसी प्राचीर के पीछे।
यहां तो बेगुनाहों ने तड़प कर जिंदगी दी है,
खड़ा इतिहास है रोता हुआ जंजीर के पीछे।
बहुत बेआबरू संवेदनाएं जब हुई होंगी,
बड़ी हलचल मची होगी नयन के नीर के पीछे।
कठिन संघर्ष में संभावनाएं जन्म लेती हैं,
इसी उम्मीद में वह है खड़ा शहतीर के पीछे।
समय की झनझनाहट सुन, बराबर काम करते चल,
न लट्टू की तरह नाचा करो तकदीर के पीछे।
कलम जो जिंदगी देगी, कहीं फिर मिल नहीं सकती,
अरे मन अब कभी मत भागना जागीर के पीछे।
सरल अभिव्यंजनाएं गीत में बिल्कुल जरीरी हैं,
इसी से भागते हैं लोग गालिब, मीर के पीछे।

## दबाये आखरों तक जाएगा ये कारवां अपना

गरीबों के घरों तक जायेगा ये कारवां अपना।
बदलते मंजरों तक जायेगा ये कारवां अपना।
विचारों की मछलियां छटपटाकर मर नहीं जायें,
उबलते सागरों तक जायेगा ये कारवां अपना।
तरक्की के तराजू पर नहीं तौले गये अब तक,
दबाये आखरों तक जायेगा ये कारवां अपना।
जहां सदियों से डेरे डालकर रहती समस्याएं,
वो छानी-छप्परों तक जायेगा ये कारवां अपना।
जिन्हें हैं दुरदुराती वक्त की लाचारियां अक्सर
उन्हीं आहत स्वरों तक जायेगा ये कारवां अपना।
जो ढरकी से लिखा करते नया इतिहास परिश्रम का
सभी उन बुनकरों तक जायेगा ये कारवां अपना।
बताओ कब रुकेगा आबरू की आंख का पानी
तुम्हारे उत्तरों तक जाएगा ये कारवां मेरा।

## गालियां गालिब, निराला खूब सहते थे यहां

खेलते होंगे उधर जाकर कहीं बच्चे मेरे।
वो खुला मैदान तट पर है, जिधर बच्चे मेरे।
भूख में लौटा हूं, पैदल रास्ते में रोककर,
मांगते हैं सेव, केले, ये मटर बच्चे मेरे।
साइकिल, छाता, गलीचे भी बनाना सीख लो,
काम देते हैं गरीबी में हुनर बच्चे मेरे।
भूख, बीमारी, उपेक्षा, कर्ज, महंगाई, दहेज,
सोच ही पाता नहीं, जाऊं किधर बच्चे मेरे।
जंतुओं के दांत-पंजों में जहर होता मगर
आदमी की आंख में बनता जहर बच्चे मेरे।
जो मिले, खा-पी के सोजा, मत किसी का नाम ले
कौन लेता है यहां, किसकी खबर बच्चे मेरे।
संस्कृतियां जब लड़ीं, सदियों की आंखें रो पड़ीं,
खंडहर होते गए, कितने शहर बच्चे मेरे।
यह बनारस है, यहां तुम पान बनकर मत जियो,
सब तमोली हैं, तुम्हे देंगे कतर बच्चे मेरे।
तुम मेरे हीरे हो, मोती हो, मेरी पहचान हो,
मेरे सब कुछ, मेरे दिल, मेरे जिगर बच्चे मेरे।
गालियां गालिब, निराला खूब सहते थे यहां,
यह कमीनों का बहुत अच्छा शहर बच्चे मेरे।

## जंगल से पैदल आयी है, पतली दुबली-काली लड़की

फटे पुराने कपड़ों में यह मादल-डफली वाली लड़की।
जंगल से पैदल आयी है, पतली-दुबली-काली लड़की।
बड़े-बड़ों की बेटी होती, पढ़ती-लिखती, हंसती-गाती,
फोन बजाती, कार चलाती, लेती हाथ रुमाली लड़की।
गा-गाकर ही मांग रही है, फिर भी गाली सुन जाती है,
लो, प्रधान के घर से लौटी लिये कटोरी खाली लड़की।
ईर्ष्या-द्वेष कलुषता से है परिचय नहीं वंशगत इसका,
नीची आंखें बोल रही हैं, कितनी भोली-भाली लड़की।
इसका तो अध्यात्म भूख है, इसका सब चिंतन है रोटी,
गली-गली, मंदिर-मस्जिद हैं, दाता-ब्रह्म निराली लड़की।
मानवता के आदि दुर्ग पर लगा सभ्यता का जो ताला,
संसद को भी पता नहीं है, किस ताले की ताली लड़की।
दुर्योधन से बेईमान-युग के प्रति गुस्सा भरकर मन में,
भीम तुम्हीं से रक्त मांगती होगी यह पंचाली लड़की।

## हर तरफ पूरा विरोधाभास है

अब नहीं दशरथ, नहीं रनिवास है।
राम - सा लेकिन मेरा वनवास है।
शुभ मुहूरत क्या पता इस देश में,
जन्म से अब तक यहाँ खरमास है।
वक़्त घसियारे के हाथों कट रही,
रात-दिन जैसे उमर की घास है।
शहर से गुस्से में आयी जो इधर,
मौत का कल मेरे घर अभ्यास है।
सभ्यता ने कल कहा ऐ आदमी,
अब तो मैंने ले लिया सन्यास है।
जिन्दगी शिकवा करे फुर्सत कहाँ,
हर तरफ पूरा विरोधाभास है।
क्या पता घर का लिखूँ ऐ दोस्तों,
हर गली, हर मोड़ पर आवास है।
अर्थ तो निर्भर है सचमुच आप पर,
शब्द का भावों से पर विन्यास है ।

## हैं चिंता में बहुत डूबे हुए खलिहान कह देना

प्रगति के हर नये आयाम को वरदान कह देना।
नये बदलाव को इस दौर का सम्मान कह देना।
न मजहब-धर्म, छूआछूत, मानव-भेद तू कहना,
अगर इतिहास पूछेगा तो बस इंसान कह देना।
कहीं जब भी चले चर्चा तुम्हारे देश गौरव की,
भले मरुभूमि है लेकिन तू राजस्थान कह देना।
बदलती मान्यताओं में कठिन संघर्ष होते हैं,
जो छूटा भीड़ में खोता है वो पहचान कह देना।

चुनावों की खुली रंजिश से हालत गांव की बिगडी,
हैं चिंता में बहुत डूबे हुए खलिहान कह देना।
जो शासन आम जनता की हिफाजत कर नहीं सकता,
समय उसको बदल देता है ये श्रीमान कह देना।
व्यवस्था चरमराकर धीरे-धीरे टूट जाती है,
उपेक्षित हो गये शासन में यदि विद्वान कह देना।
हों जलसे या अनुष्ठानों के व्रत-पर्वों के पारायण,
खुदा या राम कहना और हिन्दुस्तान कह देना।

## आप यह समझें कि हल के बैल सा जोता हूं मैं

क्या कहूं, किन-किन परिस्थितियों में कब होता हूं मैं।
आप यह समझें कि हल के बैल सा जोता हूं मैं।
खो न जाऊं भीड़ में छोटी चवन्नी की तरह,
रोज खुद को वक्त की इस जेब में टोता हूं मैं।
जानकर मौसम नहीं खुशियां उगा सकता कभी,
टूटता विश्वास फिर भी कोशिशें बोता हूं मैं।
धूप से होकर बदलियों तक गुजर जाता हूं जब,
इस तरह पहचान के अस्तित्व तक खोता हूं मैं।
मुझको सहलाती है पीड़ा अपने बेटे की तरह,
जब कमी होती है अक्सर प्यार में रोता हूं मैं।
नम हुई आंखें तो पलकें मूंद लेता हूं मगर,
सोचना मत तुम कभी ऐ जिंदगी सोता हूं मैं।
फिर हैं चौकन्ना समस्याएं बहेलिये की तरह,
देखना आकाश भटका उड़ रहा तोता हूं मैं।

## कभी तू भीड़ से होकर गुजरने की तो कोशिश कर

ये बंधन तोड़कर बाहर निकलने की तो कोशिश कर।
सड़क पर जिंदगी है यार, चलने की तो कोशिश कर।
हवा में मत उड़ो छतरी गलतफहमी की तुम ताने,
कलेजा है तो धरती पर उतरने की तो कोशिश कर।
जहां दहशतभरी खामोशियों में लोग रहते हैं,
तू उस माहौल को थोड़ बदलने की तो कोशिश कर।
हकीकत पर जहां पर्दे पड़े हों, सब उठा डालो,
ये परिवर्तन जरूरी है, तू करने की तो कोशिश कर।
जलाकर मार डालेगी तुम्हे चिंता अकेले में,
कभी तू भीड़ से होकर गुजरने की तो कोशिश कर।
कठिन संघर्ष हो तो चुप्पियां मारी नहीं जातीं,
नयी उत्तेजना से बात कहने की तो कोशिश कर।
खुला आतंक पहले जन्म लेता है विचारों में,
परिंदे भी संभलते हैं, संभलने की तो कोशिश कर।
जरूरत है मुहब्बत-प्यार की, सद्भावनाओं की,
मिलेगा किस तरह, इसको समझने की तो कोशिश कर।

## यह कलेजा हो गया है चांदमारी की तरह

कोई आये राम जैसे धनुधारी की तरह।
सोचती है जिंदगी शबरी बेचारी की तरह।
सुख मिले धृतराष्ट्र जैसे, जो हमे देखे नहीं,
और जब खुशियां मिलीं तो गांधारी की तरह।
दब गये गिरकर हमारे शब्द कुछ जब भीड़ में,
रो पड़े बूढ़े किसी अंधे भिखारी की तरह।
गीत के गुरुकुल में संयम, आत्मचिंतन के लिए,
शब्द तप करते हमारे ब्रह्मचारी की तरह।
आज के बदलाव के उमड़े हुए सागर में दूर,
हम अकेले द्वीप हैं, कन्याकुमारी की तरह।
इस शहर में गोलियां इतनी उपेक्षा की लगीं,
यह कलेजा हो गया है चांदमारी की तरह।

(संपर्कः 7522095868)

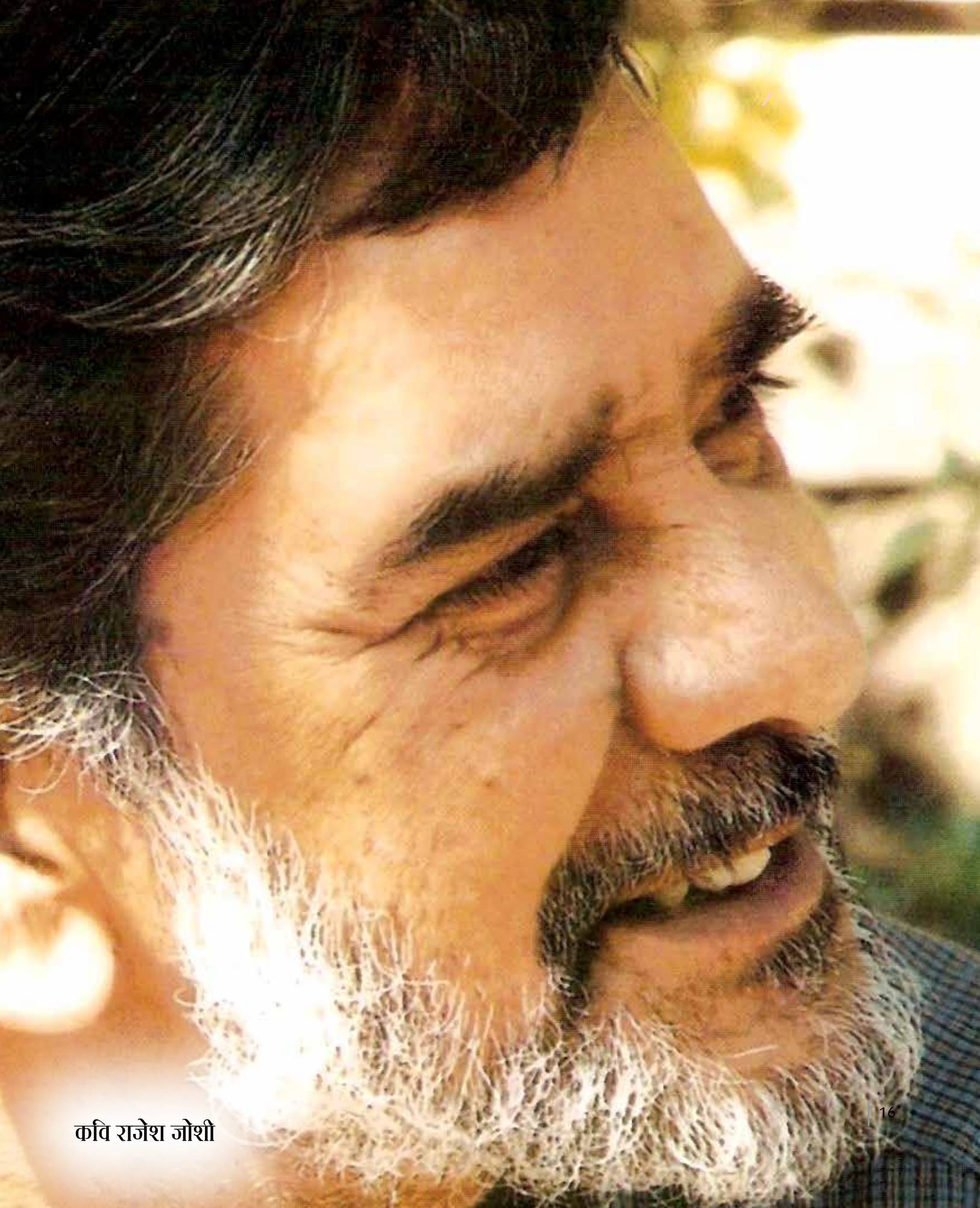

कवि राजेश जोशी

'कविकुंभ' के शब्द-संवाद में इस बार कवि राजेश जोशी

# इलैक्ट्रानिक और प्रिंट मीडिया हिंदी साहित्य के प्रति दोगले

**समकालीन गीत में विकट सच कहने की क्षमता नहीं**

**साहित्य-समय की चुनौतियों पर 'कविकुंभ' के शब्द-संवाद में हैं इस बार देश के शीर्ष साहित्यकार राजेश जोशी। वह कहते हैं- 'इधर प्रकाशकों की संख्या बढ़ी है। प्रकाशकों की पूंजी बढ़ी है। प्रकाशित होने वाली किताबों की संख्या पहले के बनिस्बत कई गुना ज्यादा हो चुकी है। हिंदी का इलैक्ट्रानिक और प्रिंट मीडिया, दोनों हिंदी साहित्य के प्रति दोगले हैं। प्रकाशक भी प्रोफेशनल नहीं हैं। वो पाठकों की संख्या को उजागर नहीं करना चाहते। इससे उन्हें लेखकों को रायल्टी देना पड़ेगा। वो पाठकों तक किताब को पहुँचाने के रास्ते में अड़चन बने हुए हैं। अधिकांश किताबों का पैपरबैक संस्करण नहीं छापा जाता। किताब को सस्ता करने और पाठक की पहुँच में लाने के जो प्रयास प्रकाशक, सरकार और मीडिया को करना चाहिए, वो जानबूझ कर नहीं किया जा रहा है।'**

साहित्य अकादमी समेत अनेक पुरस्कारों से समादृत हिन्दी के शीर्ष कवि-कथाकार राजेश जोशी किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। हमारे देश में बालश्रम के हालात पर लिखी उनकी कविता- 'बच्चे काम पर जा रहे हैं, हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह', जब भी, जहां कहीं भी पढ़ी-सुनी जाती है, सामने आ उपस्थित होती हमारे समय की विद्रूपता अंदर तक झकझोर जाती है। कई भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अँग्रेजी, रूसी और जर्मन में भी उनकी कविताओं के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। मनुष्यता की हिफाजत उनके शब्दों का प्रथम पक्ष है। उनकी रचनाओं में गहरे सामाजिक सरोकार निहित होते हैं। आइए, कुछ प्रश्नों के साथ उनके बेलाग शब्दों के साथ होते हैं -

**प्रश्न : क्या हिंदी पाठ्यक्रमों में समकालीन स्तरीय कविताओं की चयन-प्रक्रिया अब पहले की तरह असंदिग्ध नहीं रही? यदि ऐसा है तो इसके लिए मुख्यतः चयन कमेटियों के अलावा प्रकाशक, शीर्ष पदों पर बैठे अधिकारी अथवा राजनीतिक हस्तक्षेप, किन्हें जिम्मेदार माना जा सकता है?**

**राजेश जोशी** : आपने समस्या का ऐसा सामान्यीकरण कर दिया है कि उससे तमाम जगहों की चयन-प्रक्रिया संदेह के घेरे में आ गयी है। इसका नुकसान यह है कि कुछ जगहों पर, जहाँ कुछ बेहतर हुआ या हो रहा है, वह भी संदेह के घेरे में आ जाता है। चयन प्रक्रिया में कई विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पहली बार हिन्दी की समकालीन कविता को पाठ्यक्रमों में लगाया गया है ।एनसीआरटी या केन्द्रीय विद्यालयों के पायक्रम हों, सबमें महत्वपूर्ण समकालीन कवियों की कई बहुत अच्छी कविताओं का चयन किया गया है। कई विश्वविद्यालयों में भी समकालीन कविता का बहुत सही चयन किया गया है। हो सकता है कि अब बन रहे राजनीतिक दबाव में चीजें बदल जायें और उनका बहुत बुरा और विकृत पक्ष हमें देखने को मिल सकता है। जहां तक पाठ्यक्रमों में साहित्य का प्रश्न है, यह तय है कि जिन रचनाओं को चुना गया है या चुनी जायेंगी उसके लिये चयन समितियाँ ही जवाबदेह होंगी। फिर वो किस दबाव में काम करती हैं, यह बहुत मायने नहीं रखता। उन तमाम दबावों के प्रति भी वो ही जवाबदेह होंगी।

**प्रश्न : आखिर क्यों स्तरीय हिंदी कविताओं के पाठक सिमटते जा रहे हैं? भारतीय समाज की इस मनोदशा के लिए जिम्मेदार कौन, कवि, राजकीय हिंदी संस्थाएं, मीडिया की उदासीनता, बाजार अथवा लुगदी-मंच? इस दिशा में क्या कुछ किया जाना चाहिए?**

**राजेश जोशी** : स्तरीय कविता के पाठक सिमट रहे हैं, यह भी एक तरह का हाइपोथेटिकल निर्णय है। क्या पहले स्तरीय हिंदी कविता का पाठक वर्ग बहुत बड़ा था? क्या स्तरीय कविता के संग्रह पहले ज्यादा बड़ी तादाद में बिकते थे? अगर ऐसा था तो पहले संग्रह छपना इतना कठिन

क्यों था? शमशेर जैसे बड़े कवि का संग्रह लगभग पचास की उम्र में क्यों छपा? कई महत्वपूर्ण कवियों के संग्रह जगत शंखधर जी ने अपने ही खर्च से क्यों प्रकाशित किये? इधर प्रकाशकों की संख्या बढ़ी है। प्रकाशकों की पूंजी बढ़ी है। प्रकाशित होने वाली किताबों की संख्या पहले के बनिस्बत कई गुना ज्यादा हो चुकी है। हिंदी का इलैक्ट्रानिक और प्रिंट मीडिया, दोनों हिंदी साहित्य के प्रति दोगले हैं। प्रकाशक भी प्रोफेशनल नहीं हैं। वो पाठकों की संख्या को उजागर नहीं करना चाहते। इससे उन्हें लेखकों को रायल्टी देना पड़ेगा। वो पाठकों तक किताब को पहुँचाने के रास्ते में अड़चन बने हुए हैं। अधिकांश किताबों का पैपरबैक संस्करण नहीं छापा जाता। किताब को सस्ता करने और पाठक की पहुँच में लाने के जो प्रयास प्रकाशक, सरकार और मीडिया को करना चाहिए, वो जानबूझ कर नहीं किया जा रहा है। आज बड़े शहरों में भी हिंदी की किताब के लिये कोई उपयुक्त किताब की दुकान नहीं है। अंग्रेजी की पापुलर किताबों के लिये भी बड़ी-बड़ी दुकानें हर शहर में, हर रेल्वे स्टेशन और एरोड्रम पर आपको मिल जायेंगी।

**प्रश्न : समकालीन हिंदी साहित्य में खासतौर से छंदयुक्त कविता, गीत-नवगीत के प्रति आलोचकों की भूमिका पर कुछ प्रकाश डालिए?**

**राजेश जोशी :** गीत और नवगीत में नया कुछ नहीं हो रहा। हमारे समय की विकट सच्चाइयों को कह सकने की क्षमता कम-से-कम समकालीन गीत में नहीं है और अगर है भी तो बहुत कम है। कविता अपने आलोचक अपने साथ लेकर आती है। अगर आलोचना का ध्यान गीत की तरफ नहीं जा रहा है तो आलोचना को कोसने के बजाय गीत और नवगीत के कवियों को अपनी रचना में झांकने की कोशिश करनी चाहिए। यह समय है, जब कविता हो या गीत, हर कवि को आत्मालोचन की जरूरत है।

**प्रकाशित कृतियां :** समरगाथा (लम्बी कविता), छह कविता संग्रह - नेपथ्य में हँसी, दो पंक्तियों के बीच, चाँद की वर्तनी, धूप घड़ी, जिद, गेंद निराली मीठू की। कहानी संग्रह- कपिल का पेड़, मेरी चुनिन्दा कहानियाँ। नाटक - जादू जंगल, अच्छे आदमी, कहन कबीर, पाँसे, सपना मेरा यही सखी, ब्रम्हराक्षस का नाई (बच्चों का नाटक), हमें जवाब चाहिए (नुक्कड़ नाटक)। अनुवाद - पतलून पहिना बादल (मायकोवस्की की कविताओं का अनुवाद), भूमि का यह कल्पतरु (भर्तृहरि की कविताओं की अनुरचना)। आलोचना - एक कवि की नोटबुक, एक कवि की दूसरी नोटबुक, कविताएँ अनेक भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनूदित।

**सम्मानः** मुक्तिबोध पुरस्कार, माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार, श्रीकांत वर्मा स्मृति सम्मान, पहल सम्मान, मुकुटबिहारी सरोज सम्मान, निराला स्मृति सम्मान, शमशेर सम्मान, शिखर सम्मान।

**संपर्कः** 9424579277

## इसीलिए तुम पहाड़ हो

*शिवालिक की पहाड़ियों पर चढ़ते हुए हाँफ जाता हूँ*
*साँस के संतुलित होने तक पो-सज़यों पर कई*
*कई बार रूकता हूँ*
*आने को तो मैं भी आया हूँ यहाँ एक पहाड़ी गाँव से*
*विंध्याचल की पहाड़ियों से घिरा है जो चारों ओर से*
*मेरा बचपन भी गुजरा है पहाड़ियों को धाँगते*
*अवान्तर दिशाओं की पसलियों को टटोलते और*
*पहाड़ी के छोर से उगती यज्ञ के अश्व की खोपड़ी*
*जैसी उषाएं देखते हुए*
*सब कहते हैं विंध्याचल एक झुका हुआ पहाड़ है*
*अगस्त्य को दक्षिण का रास्ता देने के लिये*
*वो झुक गया था*
*और सदियों से उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है*
*मैंने कितनी बार विंध्याचल के कान में जाकर*
*फुसफुसा कर कहा*
*चिल्ला चिल्ला कर, गला फाड़ कर कहा*
*कि ऋषियों की बातों पर भरोसा करना बंद कर*
*ऋषि अपने स्वयं के झूठ से नहीं डरते*
*वो सिर्फ दूसरों को झूठ से डरना सिखाते हैं*
*पोड़ियाँ चढ़ते हाँफ जाता हूँ*
*पर शिवालिक की चढ़ाइयाँ हैं कि*
*कहीं खत्म होने का नाम ही नहीं लेतीं*
*मेरी हिम्मत जहाँ जवाब दे जाती है*
*वहाँ से ही कोई अगली चढ़ाई शुरू हो जाती है*
*साथ चलता दोस्त कहता है कि अगस्त्य यहीं आये थे*
*और इन पहाड़ों से वापस कभी नहीं लौटे*
*मैं कहता हूँ मुझे कोई मतलब नहीं कि*
*अगस्त्य दक्षिण गये थे*
*या आये थे शिवालिक की पहाड़ियों में*
*मैं कोई ऋषि नहीं, एक साधारण सा कवि हूँ*
*जो दिन रात की जद्दोजहद के गीत लिखता हूँ*
*मैं वापस लौटूँ कर जाऊँगा*
*लौट कर जाऊँगा जरूर*
*और एक बार फिर विंध्याचल को*
*बताने की कोशिश करूँगा*
*कि अगस्त्य के लौटने की प्रतीक्षा फिजूल है*
*तुम अब अपनी कमर को सीधा कर लो*
*और अपने पूरे कद के साथ खड़े हो जाओ तन कर*
*मैं तब भी तुम्हारे मजबूत कंधों पर बैठ कर*
*दूर तक फैले जीवन के रंग बिरंगे मेले देखूँगा*
*हिमालय से ज्यादा है तुम्हारी आयु जानता हूँ*
*और ज्यादा मजबूत हैं तुम्हारे कंधे*
*ज्वालामुखी के बहते हुए लावे के अचानक*
*रुक कर ठहर जाने की छवियाँ हैं तुम्हारी चट्टानों में*
*तुम्हारी गुफाओं में सुरक्षित हैं हमारे*
*पूर्वजों की उकेरी हुई*
*शिकार खेलने और आग जलाने की छवियाँ*
*मुझे तुम हमेशा अच्छे लगते हो*
*मेरी आत्मा की चील ने तो बना लिया है*
*तुम्हारी चट्टान पर अपना स्थाई घोंसला*
*तुम्हीं ने सिखाया है मुझे कि झुक जाना*
*छोटा हो जाना नहीं है,*
*जानता हूँ किसी जरूरतमंद को रास्ता देने को*
*तुम झुक गये*
*इसीलिए तो तुम पहाड़ हो !*

# प्रतीक्षा

*जब कहीं किसी निर्धारित समय पर पहुँचना हो*
*मैं अक्सर वक़्त से पहले पहुँच जाता हूँ*
*वहाँ कोई नहीं होता जो मेरी प्रतीक्षा कर रहा हो*
*मैं ही बाद में आने वालों की प्रतीक्षा करता हूँ*
*यह हड़बड़ी शायद मुझे मेरे जन्म के साथ मिली है*
*कहा जाता है, मैं आठ मासा ही चला आया था कोख से बाहर*
*धरती और आसमान की जब आँख लगी ही थी*
*उसी समय मेरी पहली रूलाई ने उनके सपनों में खलल डाला*
*कभी कभी मुझे लगता है मैं मनुष्य नहीं,*
*सिर्फ एक प्रतीक्षा हूँ*
*किसी क्लांत प्रजापति के शरीर से अग्नि के प्रकट होने की प्रतीक्षा*
*सरोवर के किनारे साइबेरिया से आने वाले पक्षियों की प्रतीक्षा*
*प्रजनन से पहले कौव्वों के घोंसला बनाने की प्रतीक्षा*
*विलम्ब से आने वाली बारिश की प्रतीक्षा*
*नींबू के वृक्ष पर फूल के फल बनने की प्रतीक्षा*
*रंगों से आकृति के आकार लेने की प्रतीक्षा*
*मृत्यु को पार कर मन के चन्द्रमाँ बन जाने की प्रतीक्षा*
*खुर के निशानों का पीछा करते हुए*
*खोये हुए जानवरों के मिल जाने की प्रतीक्षा*
*काँच की अल्मारी में रखा मैं एक जोड़ी जूता हूँ*
*जिसके तले में अभी तक कंकर, धूल, कीचड़ कुछ नहीं लगा है*
*जिसने न क्वार की धूप देखी है, न भादों की बरसात*
*जिसने न बसंत का खिलना देखा है, न पूस की रात*
*मैं तो अभी अपने को पहन लिये जाने और*
*यात्रा पर निकल पड़ने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ*
*देखने हैं कितने मुल्क, कितनी सड़के नापना है मुझे*
*कितने नदी-नाले और झरने अभी मुझे हैं पार करने*
*क्या मैं एक महाकवि के अकेलेपन के बाहर*
*कहीं दूर खड़ी उम्मीद की नाव हूँ*
*कभी कभी मुझे लगता है*
*मैं बहुत दिनों से बंद पड़ी किताब हूँ*
*जिसके पन्ने अपने को पलटे जाने के लिये*
*किसी उंगली की प्रतीक्षा कर रहे हैं*
*किसी आँख की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो*
*उसके अक्षरों पर ठहर सके*
*मैं अपने को पढ़े जाने की प्रतीक्षा हूँ*
*मैं उन होठों की प्रतीक्षा हूँ*
*जो जोर-जोर से उच्चरित करें मेरे शब्दों को*
*असुरों की नींद टूटे और वो उसे अपने पाप से बिद्ध करदें*
*फिर ऐसे कटुवचनों का जन्म हो*
*जो बिना हिचक झूठ को झूठ, अन्याय को अन्याय कह सकें*
*मैं शब्दों में अर्थ के पैदा होने की प्रतीक्षा हूँ*
*मुझे क्षमा करें, शायद मैं निर्धारित समय से पहले आ गया हूँ*
*समय तो यहाँ थक कर बैठा सुस्ता रहा है*
*मैं उसके उठने और फिर से चल पड़ने की*
*प्रतीक्षा हूँ!*
*मैं नहीं जानता बाकी लोग कब तक पहुँचेंगे*
*जिनकी आँखों में अब भी दुनिया को बेहतर बनाने का स्वप्न है*
*फिलहाल तो.. .. .*
*मैं उनके आने की प्रतीक्षा हूँ!*

# आईना

*घर में एक आईना है*
*आईने में एक आदमी रहता है*
*जो हू ब हू मेरी तरह दिखता है*
*सारी हरकतें मेरी तरह करता है*
*मेरी ही तरह उठता बैठता है चाय पीता है*
*अखबार पढ़ता है*
*हरी मिर्च को दाँत से काटता है*
*और सी सी करता है*
*यहाँ तक कि वह मेरी ही तरह*
*कविता भी लिखता है*
*मेरी तरह तैयार होता है जूते पहनता है*
*लेकिन जब मैं घर से बाहर जाता हूँ*
*वह मेरे साथ साथ घर से बाहर नहीं आता*
*मैं नौकरी बजाने जाता हूँ दिनभर खटता हूँ*
*सौदा सुलुफ लेने बाजार जाता हूँ*
*बिजली का, पानी का बिल भरने जाता हूँ*
*घर में पड़ा पड़ा वह दिनभर क्या करता है*
*मुझे नहीं पता*
*लेकिन थकाहारा जैसे ही मैं उसके सामने आता हूँ*
*वह भी मेरी ही तरह थके हारे होने का*
*स्वांग करता है ।*
*मैं कहता हूँ कि कुछ दिन के लिए*
*मैं तुम हो जाता हूँ*
*और तुम मैं हो जाओ*
*पर वह दुष्ट इस इच्छा को भी*
*मेरी ही तरह दोहराता है*
*सिर्फ!*

## रोशनी

इतना अंधेरा तो पहले कभी नहीं था
कभी-कभी अचानक जब घर की बत्ती गुल हो जाती थी
तो किसी न किसी पड़ोसी के घर में जलाई गई
मोमबत्ती की कमजोर सी रोशनी हमारे घर तक चली आती थी
कभी कभी सड़क की रोशनियाँ खिड़की से झांक कर
घर को रोशन कर देतीं
और कुछ नहीं तो कहीं भीतर बची हुई
कोई धुंधली सी मगर जिद्दी रोशनी
कम-से-कम इतना तो कर ही देती थी
कि दिया सलाई और मोमबत्तियाँ सजा-सजा कर जला ली जायें
कोई कहता है कि इतना अँधेरा तो तब भी नहीं था
जब अग्नि काठ में या पत्थर के गर्भ में छिपी थी
तब इतना धुँधला नहीं था आकाश
नक्षत्रों की रोशनी धरती तक ज्यादा आती थी
इतना अंधेरा तो पहले कभी नहीं था
लगता है यह सिर्फ हमारे गोलार्ध पर उतरी रात नहीं
पूरी पृथ्वी पर धीरे धीरे फैलता जा रहा अंधकार है
अंधेरे में सिर्फ उल्लू बोल रहे हैं
और उनकी पीठ पर बैठी देवी फिसल कर गिर गयी है गर्त में
इतना अँधेरा तो पहले कभी नहीं था
कि मुँह खोल कर अँधेरे को कोई अँधेरा न कह सके
कि हाथ को हाथ भी न सूझे
कि आँख के सामने घटे अपराध की कोई
गवाही न दे सके
इतना अँधेरा तो पहले कभी नहीं था !

## काली स्याही का पेन

सफेद कागज पर मैंने
नीली स्याही से पानी लिखा
समुद्र लिखा, नदी लिखी, तालाब लिखा
हरी स्याही से लिक्खे दरख़्त
जिनके नाम याद आये वो भी और
जिनके नाम याद नहीं आये वो भी
जितने रंग के कलम थे आसपास
उनसे लिख डाले
परिन्दे, फूल, फल, तितलियाँ
अलग-अलग रंगों के
समय को लिखने का वक्त आया
तो बस आखिर में बचा
काली स्याही का पेन मेरे हाथ में था!

## चिड़िया

जीवन का रेंगना
एक दिन अचानक
उड़ान में बदल गया
तभी भाषा में एक नया शब्द
पैदा हुआ
चिड़िया!

## बच्चे काम पर जा रहे हैं

कोहरे से ढँकी सड़क पर बच्चे काम पर जा रहे हैं,
सुबह-सुबह,
बच्चे काम पर जा रहे हैं
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है, इसे विवरण के तरह लिखा जाना
लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह
काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?
क्या अंतरिक्ष में गिर गई हैं सारी गेंदें
क्या दीमकों ने खा लिया हैं
सारी रंग बिरंगी किताबों को
क्या काले पहाड़ के नीचे दब गए हैं सारे खिलौने
क्या किसी भूकंप में ढह गई हैं
सारे मदरसों की इमारतें
क्या सारे मैदान, सारे बगीचे और घरों के आँगन
खत्म हो गए हैं एकाएक
तो फिर बचा ही क्या है इस दुनिया में?
कितना भयानक होता अगर ऐसा होता
भयानक है लेकिन इससे भी ज्यादा यह
कि हैं सारी चीजें हस्बमामूल
पर दुनिया की हजारों सड़कों से गुजते हुए
बच्चे, बहुत छोटे छोटे बच्चे
काम पर जा रहे हैं।

## रुको बच्चों, रुको!

रुको बच्चों, रुको !
सड़क पार करने से पहले रुको
तेज रफ़्तार से जाती इन गाड़ियों को गुजर जाने दो
वो जो सर्र से जाती सफेद कार में गया
उस अफसर को कहीं पहुँचने की कोई जल्दी नहीं है
वो बारह या कभी-कभी तो इसके बाद भी पहुँचता है
अपने विभाग में
दिन, महीने या कभी-कभी तो बरसों लग जाते हैं
उसकी टेबिल पर रखी जरूरी फाइल
को खिसकने में।
रुको बच्चों !
उस न्यायाधीश की कार को निकल जाने दो
कौन पूछ सकता है उससे कि तुम जो चलते हो इतनी
तेज कार में
कितने मुकदमे लंबित हैं तुम्हारी अदालत में कितने
साल से
कहने को कहा जाता है कि न्याय में देरी न्याय की
अवहेलना है
लेकिन नारा लगाने या सेमीनारों में बोलने के लिए
होते हैं ऐसे वाक्य
कई बार तो पेशी दर पेशी चक्कर पर चक्कर काटते
ऊपर की अदालत तक पहुँच जाता है आदमी
और नहीं हो पाता इनकी अदालत का फैसला।
रुको बच्चों! सडक पार करने से पहले रुको
उस पुलिस अफसर की बात तो बिल्कुल मत करो
वो पैदल चले या कार में
तेज चाल से चलना उसके प्रशिक्षण का हिस्सा है
यह और बात है कि जहाँ घटना घटती है
वहां पहुँचता है वो सबसे बाद में।
रुको बच्चों, रुको
साइरन बजाती इस गाडी के पीछे-पीछे
बहुत तेज गति से आ रही होगी किसी मंत्री की कार
नहीं, नहीं, उसे कहीं पहुँचने की कोई जल्दी नहीं
उसे तो अपनी तोंद के साथ कुर्सी से उठने में लग
जाते हैं कई मिनट
उसकी गाड़ी तो एक भय में भागी जाती है इतनी तेज
सुरक्षा को एक अंधी रफ़्तार की दरकार है
रुको बच्चों!
इन्हें गुजर जाने दो
इन्हें जल्दी जाना है
क्योंकि इन्हें कहीं पहुँचना है।

## ज़िंदगी वो बयान होती है

जिसकी ऊंची उड़ान होती है।
उसको भारी थकान होती है।
बोलता कम जो देखता ज्यादा,
आंख उसकी जुबान होती है।
बस हथेली ही हमारी हमको,
धूप में सायबान होती है।
एक बहरे को एक गूंगा दे,
ज़िंदगी वो बयान होती है।
खास पहचान किसी चेहरे की,
चोट वाला निशान होती है।
तीर जाता है दूर तक उसका,
कान तक जो कमान होती है।
जो घनानंद हुआ करता है,
उसकी कोई सुजान होती है।
बाप होता है बहुत बेचारा,
जिसकी बेटी जवान होती है।
खुशबू देती है एक शायर की,
ज़िंदगी धूपदान होती है।

– चंद्रसेन विराट

## मीर-तुलसी-कबीर बेच गया

*आज का राझां हीर बेच गया।*
*हीरे जैसा जमीर बेच गया।*
*इक कबाड़ी को वो निरा जाहिल,*
*मीर, तुलसी, कबीर बेच गया।*
*सोने-चांदी के भाव व्यापारी,*
*दे के झांसा कथीर बेच गया।*
*इक कबीले की शान रखने को,*
*अपनी बेटी वजीर बेच गया।*
*बाप-दादा की उस हवेली को,*
*एक अय्याश अमीर बेच गया।*
*कह के 'शेरी' उसे चमत्कारी,*
*कोई पत्थर फकीर बेच गया।*

– चांद शेरी

## मेरे निर्मल मन की खुश्बू

*पाकर चंदन तन की खुश्बू।*
*महकी घर-आंगन की खुश्बू।*
*लेकर आई रुत मतवाली,*
*अधरों से चुंबन की खुश्बू।*
*मीरा के गीतों, छंदों से,*
*आती है मोहन की खुश्बू।*
*मां के उस पावन आंचल में,*
*है मेरे बचपन की खुश्बू।*
*सूखे बरगद से भी इक दिन,*
*आएगी सावन की खुश्बू।*
*बाकी है टूटे रिश्तों में,*
*बरसों के बंधन की खुश्बू।*
*मेरी सांसों में है 'शेरी'*
*मेरे निर्मल मन की खुश्बू।*

## देवताओं से शुरू की वहशियों तक आ गये

*तुम कभी थे सूर्य लेकिन अब दियों तक आ गये।*
*थे कभी मुखपृष्ठ पर अब हाशियों तक आ गये।*
*यवनिका बदली कि सारा दृश्य बदला मंच का,*
*थे कभी दुल्हा स्वयं, बारातियों तक आ गये।*
*वक्त का पहिया किसे कब, कहां कुचले क्या पता,*
*थे कभी रथवान अब बैसाखियों तक आ गये।*
*देख ली सत्ता किसी वारांगना से कम नहीं,*
*जो कि अध्यादेश थे, खुद अर्जियों तक आ गये।*
*देश के संदर्भ में तुम बोल लेते खूब हो,*
*बात ध्वज की थी चलाई, कुर्सियों तक आ गये।*
*प्रेम के आख्यान में तुम आत्मा से थे चले*
*घूम फिर कर देह की गोलाइयों तक आ गये।*
*कुछ बिके आलोचकों की मानकर ही गीत को,*
*तुम ऋचाएं मानते थे, गालियों तक आ गये।*
*सभ्यता के पंथ पर यह आदमी की यात्रा,*
*देवताओं से शुरू की, वहशियों तक आ गये।*

*(संपर्क - 9329895540)*

## जो लिया था उधार, बाकी है

*एक लंबी कतार बाकी है।*
*मुफलिसी की पुकार बाकी है।*
*सूद ही सूद में बिका सब कुछ,*
*जो लिया था उधार, बाकी है।*
*कत्ल मासूम हो गए लाखों,*
*फिर भी खंजर की धार बाकी है।*
*नींद तो उड़ गई धुंआ बनकर,*
*जलती, बुझती सिगार बाकी है।*
*बस यही गम-गुसार है मेरा,*
*हाथ में जो सितार बाकी है।*
*रौनकें कारवां के साथ गईं,*
*धूल उड़ाता गुबार बाकी है।*
*आदमीयत तो मर गई 'शेरी',*
*अब तो उसका मजार बाकी है।*

*(संपर्क - 9461188530)*

## बूंद-बूंद में खून उतर आया देखो

– दीपक शर्मा 'दीप'

*मानोगे इक बात, कहो तो बोलूं मैं।*
*होने को है रा'त कहो तो बोलूं मैं।*
*पांच बजे ही मेरी बारी थी, थी ना,*
*हुए हैं पौने सात, कहो तो बोलूं मैं।*
*बूंद-बूंद में खून उतर आया देखो,*
*कैसी है बरसात, कहो तो बोलूं मैं।*
*गोया ऐसा खेल नहीं है दुनिया में,*
*शह में बैठी मात, कहो तो बोलूं मैं।*
*इंसां हो तो इंसां रहना सीखो, और*
*गन्दी-गन्दी बात, कहो तो बोलूं मैं।*
*काले करतब, काले धंधे वाले लोग,*
*पूछ रहे हैं 'जात', कहो तो बोलूं मैं।*
*केवल आँतें टूट रही हैं बाकी 'दीप',*
*अच्छे हैं हालात, कहो तो बोलूं मैं।*

## फासले हैं तो हैं तो हैं तो हैं

*आ'बले हैं तो हैं तो हैं तो हैं।*
*कोयले, हैं तो हैं तो हैं तो हैं।*
*खैर पहलू में हैं पड़े लेकिन*
*फासले हैं तो हैं तो हैं तो हैं।*
*दाग हैं, चित्तियां भी हैं, हाँ हैं,*
*हैं जले हैं, तो हैं तो हैं तो हैं।*
*दर्द है, इश्क, हाय दुनिया भी,*
*मशगले हैं तो हैं तो हैं तो हैं।*
*गुड़ नहीं, चून भी नदारद है,*
*गुलगुले हैं तो हैं तो हैं तो हैं।*
*ये अलग बात के नहीं 'मैना'*
*'घोंसले' हैं, तो हैं तो हैं तो हैं।*
*एक गोरी कहा करे है 'दीप'*
*'साँवले' हैं तो हैं तो हैं तो हैं।*

## हमारा जख़्म देखो भर रहा है

*सफर दुश्वार कर दोगे फलाने।*
*बहुत बीमार कर दोगे फलाने।*
*हमारा जख़्म देखो भर रहा है,*
*जरा-सा वार कर दोगे फलाने?*
*चुरा के जा रहे हो दिल हमारा,*
*मगर, बे-कार कर दोगे फलाने।*
*तुम्हें मौका नहीं हासिल वर्ना,*
*गबन सौ-बार कर दोगे फलाने।*
*न आयेंगे कभी भी भूलकर के,*
*अगर उस पार कर दोगे फलाने।*
*तलब सी है हमें बदनामियों की,*
*कहो! अखबार कर दोगे फलाने?*
*मुहाजिर हैं, अभी तो दर-बदर हैं,*
*दर-ओ-दीवार कर दोगे फलाने?*

*(संपर्क -9540749166)*

## शून्य जमा है, अंक गोल है

– चिन्तामणि पाठक

*बड़ी रजाई, बड़ा खोल है।*
*बड़े ढोल की बड़ी पोल है।*
*मोलभाव है अपना-अपना,*
*अपनी-अपनी नाप-तोल है।*
*टूट रहा है वहीं भरोसा,*
*जहाँ हमारा मेल-जोल है।*
*खून-पसीने के खाते में,*
*शून्य जमा है, अंक गोल है।*
*रंग सिमट जाते काले में,*
*कैसा अदभुत बना घोल है।*
*देश पड़ा है चौराहे पर,*
*उनका बढ़ता हुआ मोल है।*

*(संपर्क - 9425844168)*

# किस तरह साबुत बचेंगी उँगलियां, बचना जरा

– रामस्वरूप मूंदड़ा

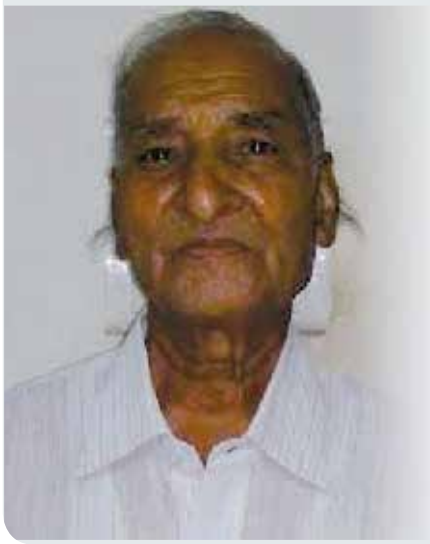

मुस्करा करके गिराते बिजलियाँ, बचना जरा।
रेशमी कपड़े में लाते आरियाँ, बचना जरा।
इस शहर में छांव की उम्मीद करना व्यर्थ है,
बागवाँ खुद ही कटाते डालियाँ, बचना जरा।
बाजुओं में खोखलापन और बातें चाँद की,
ढो रही हैं बोझ ऐसा पीढ़ियाँ, बचना जरा।
हादसों का एक ऐसा सिलसिला मामूर है,
जहर में डूबी हैं सारी कुर्सियाँ, बचना जरा।
मजहबों के द्वार पर मत्था पटक मर जाओगे,
ये दिलों में गांठ देती रस्सियाँ, बचना जरा।
है बहुत नाजुक, न उनको छेडना, बस देखना,
टूट जाती हैं कुँवारी चूड़ियाँ, बचना जरा।
चिन तो सकते हो इमारत ताज से बजोड़ पर,
किस तरह साबुत बचेंगी उँगलियाँ, बचना जरा।

(संपर्क - 09414926428)

# देखिये, उनको भी तमगा मिल गया

डूबते को एक तिनका मिल गया।
पूछिए मत आज क्या-क्या मिल गया।
अब पसीना पोंछना आसान है,
गर्मियों में एक गमछा मिल गया।
छत्रपों की भीड़ में फिर देखिये,
बादलों का एक टुकड़ा मिल गया।
कौन जीता, कौन हारा, छोड़िये
देखिये, उनको भी तमगा मिल गया।
जाइये, बहलाइये मन, जाइये,
खेलने को एक फुग्गा मिल गया।
लापता था एक आरसे से इधर,
बाग को फिर से पतंगा मिल गया।

# मेढकों को जुकाम है प्यारे

– राकेश अचल

एक कंबल तमाम है प्यारे।
ये बहुत इंतजाम है प्यारे।
आज बदला है गाँव का मौसम,
मेढकों को जुकाम है प्यारे।
भाग कर किस गली में जायेंगे,
हर तरफ कत्लेआम है प्यारे।
वो भी अपना बताया जाता था,
ये भी अपना निजाम है प्यारे।
पाँव जलने लगे हैं पानी में,
आग जैसा ही घाम है प्यारे।
कौन सुनता है, कौन गुनता है,
फालतू का कलाम है प्यारे।
दे रहा हूँ, सम्हाल कर रखना,
आखिरी ये सलाम है प्यारे।

# महज दो-चार झंडों की कृपा है

उधर, ताबीज-गंडों की कृपा है।
उधर, मुल्लाओं, पंडों की कृपा है।
हमारे लखनऊ में आइयेगा,
पुलिस की, और डंडों की कृपा है।
सुपरहिट है हमारी गाय माता,
उसी के दूध-कंडों की कृपा है।
हमारा कुछ नहीं अहले जहां में,
महज दो-चार झंडों की कृपा है।
न मुर्गे हैं, न घर में मुर्गियां अब,
मगर सरकार अण्डों की कृपा है।
इलेक्शन हारकर जीते, मुबारक,
प्रशासन के मुचंडों की कृपा है।

# आह दिल से निकलती रही रात भर

– 'राही' भोजपुरी

उफ! हवा सर्द चलती रही रात भर।
अपना तेवर बदलती रही रात भर।
रात थी वो अमावस की काली, फकत,
एक समआ ही जलती रही रात भर।
नींद आई न जब नाजनीं क्या करे,
सीढ़ियों पर टहलती रही रात भर।
महजबीं सूने बिस्तर पे तन्हा पड़ी,
सिर्फ करवट बदलती रही रात भर।
पास मरघट से आती अजानी सदा,
उसके कानों को छलती रही रात भर।
दर्द-ओ-गम के सिवा पास कुछ भी न था,
आह दिल से निकलती रही रात भर।
उसके चेहरे पे थीं 'राही 'मायूसियां,
सुर्ख आंखों को मलती रही रात भर।

## कविता का खेत सब उजाड़ दिया कौओं ने

– राम सेंगर

*कविता का खेत सब उजाड़ दिया कौओं ने*
*गीतों के गुफने ये तान-तान मारो !*
*रस्से पर निरपराध शब्द बहुत नाच लिया*
*चिलमभांज बुझी हुई चिलम में सड़ाकों से*
*लगे हुए दहकाने आग,*
*डाले वाचाल मनोबल का मुँह में बीड़ा*
*मस्ती के नाज लिए लल्लू-जगधर गुजरे*
*रचना से जीवन में, जीवन से रचना में*
*इधर मची है भागमभाग,*
*शिरा-धमनियों के इस रक्त के निचुड़ने तक*
*भ्रम सारे टूटेंगे बिना किसी संशय के*
*वचन बोल जो भी उच्चारना उचारो !*
*यहीं रही जस की तस, परिधि में समा न गयी*
*छाती के बटन खोल चश्मों में भद्र हँसें*
*जश्न वापसी के दिन-रात,*
*तीन पात ढाक के प्रयोजन सक्रियता का*
*स्यानों ने मंजर पर छाने की हड़बड़ में*
*दिखलादी अपनी औकात,*
*बछड़ों में शामिल हो स्वीकृति के लिए बैल*
*कटवाते फिरें सींग, रँगवाते फिरें खाल*
*इन सब के रेशमी मुगालते उतारो !*

## अभिव्यक्ति न अपनी शब्दखेल

*खुरहर सूनी, दुख बेशुमार।*
*अपनी-अपनी कहने वाले, मसखरे गरज के मतवाले*
*कट-कट मिलते बाँहें फैला, फिचकुर छिटकाते गंधैला*
*कैसे दें उन पर प्राण वार।*
*कचरा हो या कूड़ादानी, माखीजा हो या मलकानी*
*प्रभुताई का अंधा गुरूर, साधे हैं सारे बेशऊर*
*सच कहता है यह खाकसार।*
*कुर्ते पर फटे सलूका-से, जनपद में एक बिजूका-से*
*घोड़ों में गदहा कहे गये, सम्बोधन मिलते गये नये*
*फब रहे हमें सब अस्वीकार।*
*उपदेशक वे, हम दास हुए, यारों के जब-जब पास हुए*
*मुद्राओं के सब धनी रहे, हमने सोचा, बस, बनी रहे*
*नाखूनों पर गो रही धार।*
*अभिव्यक्ति न अपनी शब्दखेल, भैयों ने तानी है गुलेल*
*अनुभव का सत्य नहीं भाये, सौंदर्यबोध पर इतराये*
*है लाइलाज यह अपस्मार।*
*टूटी, रचना की मुख्य धुरी, हो गयी गद्य कविता ससुरी*
*कुछ रेड़ कुचबँधों ने मारी, कुछ नामवरों की मक्कारी*
*फल-फूल रहा है रोजगार।*
*बांगुर फैले हैं कदम-कदम, चौकन्ना रहते हैं हरदम*
*कब कौन पटखनी दे मारे, कब आग-फूस हम पर डारे*
*कब अपने दे बकले उतार।*

## स्वप्नदर्शियों ने जग लूटा तेरी क्या औकात फकीरे!

*गाँव हमारा वृन्दावन था, इसी धीर नदिया के तीरे।*
*हैरत में हैं कहाँ गया वह लेश नहीं पहचान बची रे।*
*उजड़ गये रोजी-रोटी में खाकनशीनों के सब टोले,*
*साठगाँठ सत्ता-पूंजी की गाँठ पुरानी खुले न खोले,*
*शोषण और विलास ले गये लूट समय के*
*मोती-हीरे।*
*खेत हुए सब बाग-बगीचे बदल लिए*
*संस्कृति ने चोले,*
*बन्द गली में खड़ा बिजूका, देख-देख मन*
*हाले-डोले,*
*गति के कंधे प्रगति चढ़ी है,*
*भारी लीला प्रभू रची रे।*
*पुरे पोखरे ताल तलैया डम्पर दौड़ रहे चौखूँटा,*
*धूसर गर्द हवाओं में है पत्ता-पत्ता बूटा-बूटा,*
*एकमेक सब डुंगरी-डबरे*
*नये सृजन की धूम मची रे।*
*तकनीकों-तजबीजों का मद बना रहा है*
*इसको अंधा,*
*चाट रहा भाईचारे को यह विकास का गोरखधंधा,*
*घर-घर में सन्नाटा पसरा जाने कैसी जोत जगी रे।*
*यारी बेपरवाही नेकी गप्पसड़ाकों के ढब न्यारे,*
*उतर गये दृश्यावलियों के रूप-रंग-रस प्यारे-प्यारे,*
*रंगत-रौनक-खुशबू सारी उड़ी हवा में धीरे-धीरे।*
*समय किसी के पास नहीं है भरम सभी के*
*अपने-अपने,*
*रातोंरात बड़ा होने के हैं सबकी आँखों में सपने,*
*स्वप्नदर्शियों ने जग लूटा तेरी क्या औकात फकीरे।*

*(संपर्क - 9893249356)*

## शब्द मौन हैं, बानी चुप है

राजा चुप है, रानी चुप है।
ठिठकी हुई कहानी चुप है।
कालिदास अब भी उज्जयिनी में रहते हैं!
देख रहे हैं सब कुछ लेकिन कुछ भी
कभी नहीं कहते हैं,
मेघदूत आते हैं अब भी,
शब्द मौन हैं, बानी चुप है।
उज्जयिनी में सब है, केवल न्याय नहीं है,
पर जीने का कोई और उपाय नहीं है,
भीतर चीखें हैं, क्रन्दन है
पर आँखों का पानी चुप है।

– माहेश्वर तिवारी

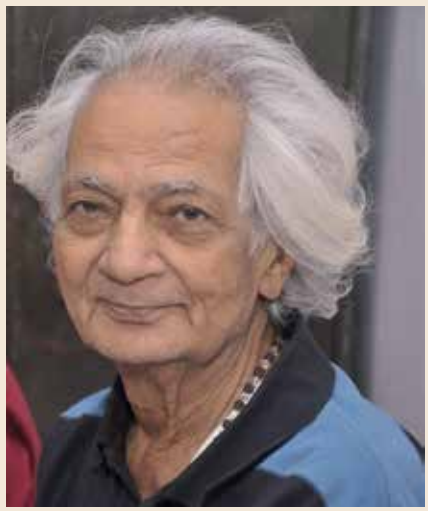

## शामें लगती हैं थकान से टूटे कन्धों-सी

खुद से खुद की बतियाहट
हम लगता भूल गए।
डूब गए हैं हम सब इतने
दृश्य -कथाओं में,
स्वर कोई भी बना नहीं है शेष
हवाओं में, भीतर के मन की आहट
हम लगता भूल गए।
रिश्तों वाली पारदर्शिता
लगे कबन्धों-सी,
शामें लगती हैं थकान से टूटे
कन्धों-सी, संवादों की गरमाहट
हम लगता भूल गए।

## सपनों में खोये हैं पेड़

कुहरे में सोये हैं पेड़।
पत्ता-पत्ता नम है,
यह सबूत क्या कम है,
लगता है, लिपट कर टहनियों से
बहुत बहुत रोये हैं पेड़।
जंगल का घर छूटा
कुछ-कुछ भीतर टूटा
शहरों में बेघर होकर जीते
सपनों में खोये हैं पेड़।

## हर तरफ घिरी-घिरी उदासी

आओ हम धूप-वृक्ष काटें।
इधर-उधर हलकापन बाँटें।
अमलतास गहराकर फूले
हवा नीमगाछों पर झूले,
चुप हैं गाँव, नगर, आदमी
हमको, तुमको, सबको भूले
हर तरफ घिरी-घिरी उदासी
आओ हम मिल-जुल कर छाँटें।
परछाईं आ कर के सट गई
एक और गोपनता छँट गई,
हल्दी के रँग-भरे कटोरे-
किरन फिर इधर-उधर उलट गई
यह पीलेपन की गहराई
लाल-लाल हाथों से पाटें।
आओ हम धूप-वृक्ष काटें।

## कल उगेंगे फूल बनकर हम जमीनों में

हम पसरती आग में
जलते शहर हैं।
एक बिल्ली रात-भर
चक्कर लगाती है,
और दहशत जिस्म
सारा नोच जाती है,
हम झुलसते हुए बारूदी
सुरंगों के सफर हैं।
कल उगेंगे फूल बनकर
हम जमीनों में
सोच को तब्दील करते
फिर यकीनों में
आज तो ज्वालामुखी पर
थरथराते हुए घर हैं।

(संपर्क - 9456689998)

## शेष हैं परछांइयां

– डॉ. हरीश निगम

फट गये, सारे गुलाबी चित्र।
सूख कर झरता हरापन
और उड़ती धूल
शेष हैं परछांइयां कुछ
दर्द वाले फूल,
टीसते हैं फांस जैसे मित्र।
एक आदमखोर चुप्पी
लीलती दिन-रात
और दमघोटू हवाएं
हर कदम आघात,
खो गये काले धुएं में इत्र।

## उगते हैं छल

ठूंठ हुआ है पीपल झरती है नीम।
माहुर सी शहर की हवा
फोड़ गयी गांव घर तवा,
चूल्हे हैं आवारा चक्कियां यतीम।
खेतों में उगते हैं छल
दूषित है पोखर का जल,
रोज नयी बीमारी नये जरासीम।

(संपर्क - 9827203235)

## सूरज की हरवाही

जेठ तमाचे सावन पत्थर मारे सिर चकराये।
माघ काँप कर पगडौरे में ठण्डी रात बिताये।
भूखे पेट बिहनियाँ करती सूरज की हरवाही,
हारी-थकी दुपहरी माँगे संध्या से चरवाही,
देर रात तक पाही करके चूल्हा चने चबाये।
चिंताओं से दूर झोंपड़ी देकर ब्याज पसीना,
वक़्त महाजन मूलधनों में जोड़े लौंद महीना,
रातों को दिन गिरवी धरकर अपने दाम चुकाये।
मंगल में बसने की इच्छा मँगलू मन से कूते,
ममता के हाथों गुड़पानी जीवन सुख अनुभूते,
हाथ नेह का फिरे पीठ पर अंक लिये दुलराये।

## पागल हुआ रमोली

– रामकिशोर दाहिया

राजकुँवर की ओछी हरकत सहती जनता भोली।
बेटी का सदमा ले बैठा पागल हुआ ह्यरमोलीह्न।
देह गठीली, सुंदर आँखें दोष यही ह्यअघनीह्न का,
खाना-खर्चा पाकर खुश है भाई भी मँगनी का,
लीला जहर मरेगी ह्यफगुनीह्न उठना घर से डोली।
संरक्षण में चोर-उचक्के अपराधी घर सोयें
काला-पीला अधिकारी कर हींसा दे खुश होयें,
धंधे सभी अवैध चलाते कटनी से सिंगरौली।
जेबों में कानून डालकर प्रजातंत्र को नोचें
करिया अक्षर भैंस बराबर दादा कुछ ना सोचें,
बोलो! खुआ लगाकर दागें घर में घुसकर गोली।

## अम्मा

मुर्गा बाँग न देने पाता उठ जाती अँधियारे अम्मा।
छेड़ रही चकिया पर भैरव राग बड़े भिनसारे अम्मा।
सानी-चाट चरोहन चटकर गइया भरे दूध से दोहनी
लिये गिलसिया खड़ी द्वार पर टिकी भीत से हँसी मोहनी,
शील, दया, ममता, सनेह के बाँट रही उजियारे अम्मा।
चौका बर्तन करके रीती परछी पर आ धूप खड़ी है,
घर से नदिया चली नहाने चूल्हे ऊपर दाल चढ़ी है,
आँगन के तुलसी चौरे पर आँचल रोज पसारे अम्मा।
पानी सिर पर हाथ कलेबा लिये पहुँचती खेत हरौरे,
उचके हल को लत्ती देने ढेले आँख देखते दौरे,
जमुला-कजरा धौरा-लखिया बैलों को पुचकारे अम्मा।
घिरने पाता नहीं अंधेरा बत्ती दिया जलाकर धरती,
भूसा-चारा पानी-रोटी देर-अबेर रात तक करती,
मावस-पूनों ढिंगियाने को द्वार-भीत-घर झारे अम्मा।

(संपर्क - 9752539896)

## मेरा एकाकीपन

– अशोक स्नेही

किसे जरूरत है मेरी जो
मेरा एकाकीपन बांटे।
अच्छा तो मैं यूं करता हूं,
एक सलोनी मूरत गढ़ कर
उसमें अपना दिल धरता हूँ,
मेरे नित आवाहन सुन-सुन,
होगी वह चैतन्य कभी तो,
मेरे आँसू-आहें चुन-चुन,
न भी हो पाये तो क्या है,
मन मंदिर की देवी पीड़ा
न भी सहलाये तो क्या है,
यही बहुत है उसका होना
उपवन बांटे-निर्जन बांटे।

## जी जाता हूँ सुबह सुबह

सूरज जब दस्तक देता है,
जी जाता हूँ सुबह सुबह।
स्याह रात प्याली में भरकर
पी जाता हूँ सुबह सुबह।
लंच बाक्स में एक दुपहरी
बड़े यतन से रखता हूँ,
आखिर कुछ रिश्ता नाता तो
मैं भी तन से रखता हूँ,
धड पर सिर का बोझा लादे
जब वापस घर आता हूँ,
जाने किस क्षण बैठे लेटे
अनायास मर जाता हूँ,
सूरज जब दस्तक देता है,
जी जाता हूँ सुबह सुबह।

(संपर्क - 9927192583)

## अपने घर में अम्मा

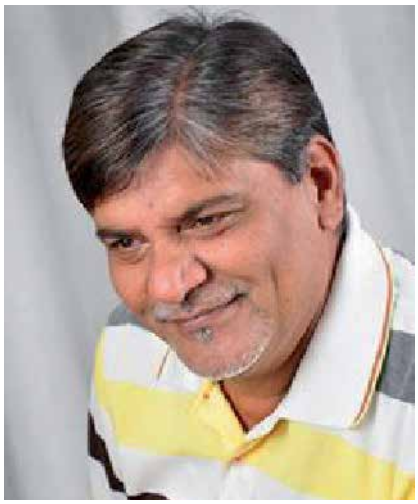

– राघवेंद्र तिवारी

*अपने घर में*
*रहती रही कबाड़ जोड़ती*
*समय हथेली से मरोड़ती*
*अम्मा, जिसके दर्शन में जीवन पलता था,*
*चली गई चिड़िया जैसे कि उड़ जाती है,*
*मीलों पसरे हुए अधर में, अपने घर में।*
*कमरों में इस वियाबान के*
*कभी सपन थे खानदान के,*
*जिनके शीर्ष वचन सुन-सुन के,*
*बने मंत्र हम आह्वान के*
*अम्मा, जिसकी पलकों में*
*बादल बसते थे, दूर खड़ी गैया*
*जैसे कि रंभाती है,*
*अपनों से हो दूर डगर में,*
*अपने घर में।*
*अब खिड़की दरवाजों वाला,*
*अनसुलझी आवाजों वाला,*
*धैर्य कि जैसे यहाँ रहा चुप,*
*लिए हृदय एक राजों वाला,*
*अम्मा, बिन घर सूना-सूना, ताका करता*
*लुटी राज-सत्ता को जैसे देख रहा हो*
*सैनिक कोई महा-समर में,*
*अपने घर में।*

## सुनो ओ संतापशीले

*सुनो ओ संतापशीले!*
*सुबह, इस चढ़ते प्रहर में*
*क्यों नयन अधखुले, गीले।*
*दुःख यहाँ पर है दुखी*
*संतोष कब का चुक गया है,*
*वक्त सहमा जो दिया था*
*हार-थक कर रुक गया है,*
*रात ने अपने अधूरे-से*
*कसे तटबंध ढीले*
*क्यों पिता ने कर दिए*
*इस जगह मेरे हाथ पीले।*
*फटे अंतर्वस्त्र का*
*घटने लगा है सधा जादू,*
*मौन रहने लग गया है*
*झोपड़ी का श्याम-साधू*
*गीत जो भी छोड़कर*
*तुम गए थे बेशक रसीले*
*वे पड़े आह्वान पथ में*
*हैं स्वयं के पंख छीले।*
*हो गई है तंगदस्ती का*
*अमिट पर्याय साड़ी*
*घिसटती जर्जर हुई है*
*नेह की अव्यक्त गाड़ी*
*पान के पत्ते सरीखे*
*स्मरण जो थे रसीले*
*बिखरने को हैं जुटे*
*संवाद सारे वे रंगीले।*

*(संपर्क - 9424482812)*

## कान पक गये काँव-काँव से

– डॉ. अमरेन्द्र

*लौट के आया गाँव-गाँव से।*
*कान पक गये काँव-काँव से।*
*पुरबारी का पछियारी ने, यार के यारों की यारी ने,*
*दखनाहा ने उतराहा का, उमताहा ने छिमताहा का,*
*इस टोला ने उस टोला का, पहलवान ने बमभोला का,*
*क्या कर डाला क्या बतलाऊँ, दर्द नहीं है जो सहलाऊँ,*
*धूप मिली है छाँव-छाँव से।*
*पोखर सारे भते भताए, वैसे ही सब कुएँ दिखाए,*
*नहर दिखी बहती नाली-सी, भरी चीज भी थी खाली-सी,*
*नदी मिली बहती-सी ऐसे, रेत बहे खेतों में जैसे,*
*नीचे जल था, ऊपर बालू, सूख रहे थे सबके तालू,*
*आग उठी थी ठाँव-ठाँव से।*
*घर मिट्टी के, घर पक्के के, सौ इक्के के, छः छक्के के,*
*छक्के की छत पर दौलत थी, इक्के के दुर्दिन थे, गत थी,*
*ऐसे तो सब सटे-सटे थे, लेकिन काफी बँटे-बँटे थे,*
*हाथ नहीं थे पर मशाल थे, शिव लगते,*
*ज्यों रूद्र काल थे, सारे सुर थे घाँव-घाँव-से।*
*डरे-डरे उत्सव के लम्हे, पर्व मिले सब सहमे-सहमे,*
*कब फट जाए स्वयं का घाती, बस्ती लील जाए उतपाती,*
*सबकी आँखें डरी-डरी-सी, भादो में ज्यों भरी-भरी-सी,*
*बिखरा सब कुछ, बंध नहीं था, चौपाई तक छन्द नहीं था,*
*उकता आया झाँव-झाँव से।*
*बँसबिट्टी का गाँव क्या हुआ, हार गई क्यों पुरबा-पछुआ,*
*दिन-दिन गुजरा, गुजरे माहें, वर्ष तलक ऋतुओं की आहें,*
*कहीं नहीं जड़ थी, न फुनगी, बदहवास मौसम की जिनगी,*
*जमे लोग थे, पिघली धरती, नागफनी पर बेसुध परती,*
*रक्त रिसे थे पाँव-पाँव से।*
*कौन फेरता इस पर फेरा, इसके सुख का कौन लुटेरा,*
*छीन ले गया नींद रात की, और मिठास रसभरी बात की,*
*रिश्ता विष का खेल बन गया, गाँव शहर का जेल बन गया,*
*सोच रही थी रुपसावाली, सबकी कोठी खाली-खाली,*
*कोठी के ही खाँव-खाँव से।*

*(संपर्क - 9939451323)*

## चीर हरण

प्रीतिप्रवीण खरे

*निष्ठुर दुःशासन ने खेंचा, कालचक्र के हाथों बेचा,*
*पांडव कायर बनते देखे, दृग निर्वसन पहनते देखे,*
*अंगारों सी रोज जलूंगी।*
*स्वयं का स्वयं न्याय करूँगी, अपने केश खुले रखूंगी,*
*स्वामी मेरे दांव लगाते, नारी को दौलत बतलाते,*
*अब उनके संग नहीं रहूंगी।*
*भीष्म पितामह कितने गहरे, राजा अन्धे-गूंगे-बहरे,*
*सबने देखा, सब पर पहरे, पलक-पलक पर आँसू ठहरे,*
*अपमानों को नहीं सहूंगी।*
*गांधारी भी मौन रही है, वह दुश्मन की कौन रही है,*
*कुंती की भी भूल रही है, इतिहासों में झूल रही है,*
*कठपुतली मैं नहीं बनूंगी।*
*धर्मराज का कल क्या होगा, भीमबली का बल क्या होगा,*
*दुःशासन का फल क्या होगा, शकुनी वाला छल क्या होगा,*
*दुर्योधन की नहीं बनूंगी।*
*अबला मुझको कहने वालो, निर्बल मुझको करने वालो,*
*झूठों के संग रहने वालो, अन्धों के संग चलने वालो,*
*कभी किसी से नहीं डरूंगी।*
*सच की राह दिखाने आये, धर्म कर्म सिखलाने आये,*
*गीता पाठ पढ़ाने आये, कान्हा लाज बचाने आये,*
*हर युग तेरे चरण पड़ूंगी।*
*पीर गगन के पार हुई है, धरती की कब हार हुई है,*
*शपथ यहां तलवार हुई है, भरी सभा ललकार हुई है,*
*डर के आगे नहीं झुकूंगी।*

*(संपर्क - 9425014719)*

## मेरी मुट्ठी

रेणुका अस्थाना

*नहीं चाहती मां, मैं सूरज नहीं, चांद की थाती।*
*ना बनना चाहूं मैं दीपक, ना दीपक की बाती।*
*ना बनना आकाश मुझे, ना घर-आंगन का कोना,*
*ना चाहूं धरती मैं बनना, ना कण-कण का सोना,*
*ना चाहूं सीता मैं बनना, ना पांडव पांचाली,*
*ना मदिरा की जाम बनूं मां, ना खाने की थाली।*
*ना चाहूं चादर-सा जीवन, ना चूल्हे की रोटी,*
*ना चाहूं सिंहासन का सुख, ना घुन लगी घठौती।*
*ना रोपो मुझमें मां अपने सपनों के तुम मोती,*
*ना दो मुझको परंपराओं की मां खुली चुनौती।*
*मैं हूं अपना जीवन, अपने कदम-कदम की ठांव,*
*मैं हूं आगे की सीढ़ी मां, खुद रखूंगी पांव।*
*खुला क्षितिज मुट्ठी में लेकर अब चलना है मुझको,*
*मृत्यु नहीं रोकेगी मुझको, मैं रोकोगी उसको।*

*(संपर्क - 9982448126)*

## शब्द दिल की तरह धड़कते हैं

डॉ. तारा गुप्ता

*मेरे गीतों के नर्म सीने में शब्द*
*दिल की तरह धड़कते हैं।*
*दूरियाँ, दूरियाँ नही हैं अगर*
*उनमें सच्चे मिलन की आहट हो,*
*सोचती हूँ कि मेरा हर आँसू*
*तेरे आने की मुस्कराहट हो,*
*तेरी नजरें छुएं तो दिन मेरे*
*खुशबुओं की तरह महकते हैं।*
*देख३, कब से उदास बैठी हैं,*
*फूले के बिना शाख की राहें,*
*मुझको डर है, न काठ बन जायें*
*ये तेरे इंतजार की बाँहें,*
*तू है मंजिल तो पाँव तेरी तरफ*
*चलते-चलते कभी न थकते हैं।*

*(संपर्क - 9810721791)*

# अपनेपन की धूप

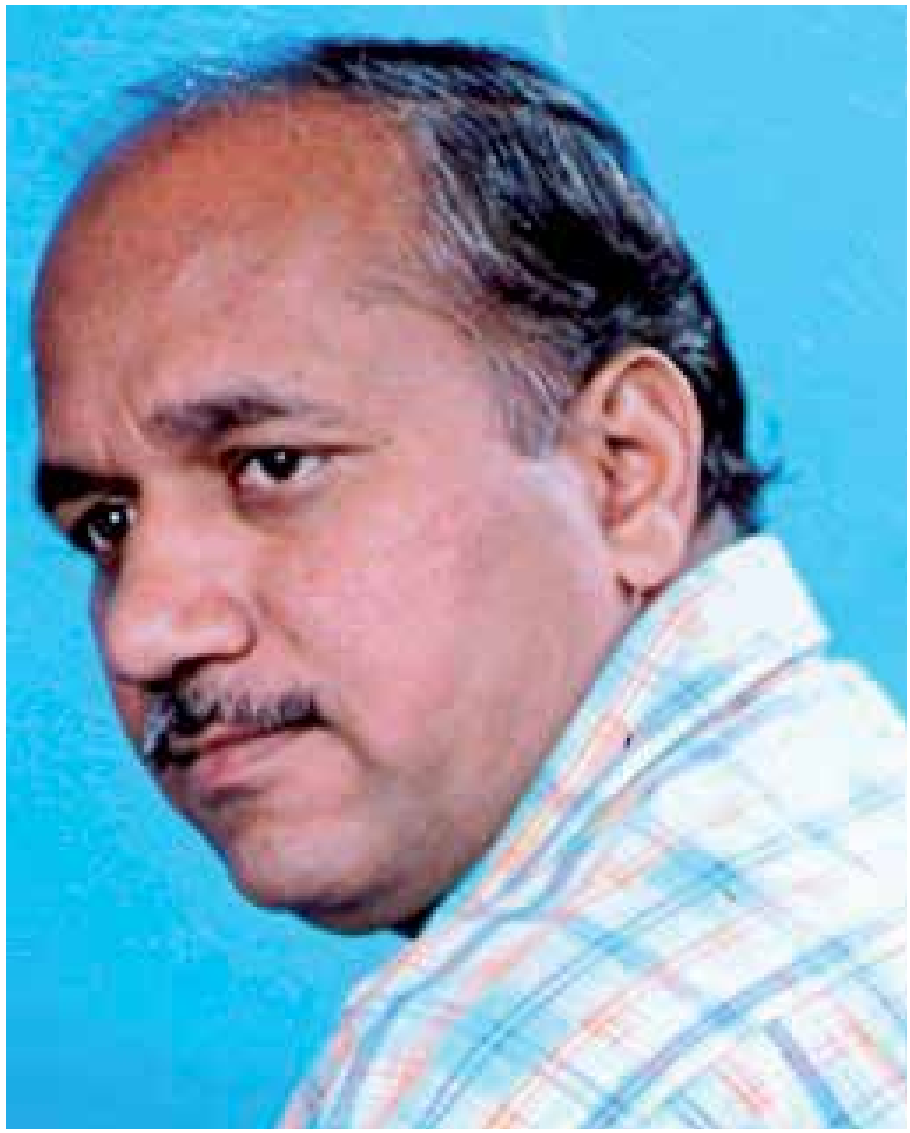

– योगेन्द्र वर्मा 'व्योम'

छँटा कुहासा मौन का, निखरा मन का रूप ।
रिश्तों में जब खिल उठी, अपनेपन की धूप ।।
कहीं रही न आपसी, शेष हार या जीत ।
लिखे समय के पृष्ठ पर, रिश्तों ने जब गीत ।।
जब जीवन की साँझ में, रिश्ते रहें उदास ।
पाते हैं सुख शान्ति तब, आजीवन वनवास ।।
नई बहू ससुराल जब, पहुँची पहली बार ।
स्वागत में सब बन गए, रिश्ते तोरणद्वार ।।
नहीं जरूरी खून के, रिश्ते ही हों खास ।
व्यवहारिक रिश्ते सदा, देते रहें उजास ।।
मैंने पूछा कौन-सा, रिश्ता अधिक पवित्र ।
मुझको दिखलाने लगा, वह मरघट के चित्र ।।
चलो करें कुछ कोशिशें, मिलकर ऐसी मित्र ।
आने वाला कल बने, उजला और पवित्र ।।
भौतिकता की भीड़ में, गुम हो गए चरित्र ।
फिर से हर घर में बनें, संस्कार के चित्र ।।
बेशक हम हर क्षेत्र में, प्रतिदिन करें विकास ।
कटें न जड़ से हम कभी, यह भी रहे प्रयास ।।
रोज कुहासा पढ़ रहा, सर्दी का अखबार ।
ठिठुर-ठिठुर कर मौत से, गई गरीबी हार ।।
कुहरा धरता ही रहा, नित्य भयंकर रूप ।
रिश्तों में अपनत्व-सी, कहीं खो गई धूप ।।
कुहरे ने जब धूप पर, पाई फिर से जीत ।
सर्दी भी लिखने लगी, ठिठुरन वाले गीत ।।
अपनेपन की खोज में, छाना जब इतिहास ।
मिले मुखौटे शून्य के, लिए हुए सन्त्रास ।।
पता नहीं अभिशाप है, या फिर यह वरदान ।
मोबाइल ने छीन ली, चिट्ठी की पहचान ।।
बिखरे खुशबू धूप-सी, यत्र-तत्र-सर्वत्र ।
बहुत दिनों के बाद जब, मिले किसी का पत्र ।।
अक्सर बंटते ही रहे, धन-दौलत-नभ-नीर ।
लेकिन बंटी न आज तक, सपनों की जागीर ।।
देख-देखकर हैं दुखी, सारे बूढ़े पेड़ ।
रोज तनों से टहनियाँ, करती हैं मुठभेड़ ।।
रमुआ सबसे पूछता, लेकर खाली पेट ।
चौं भैया का होत है, हाई स्पीड बुलेट ।।
सुख साधारण डाक से, पहुँच न पाए गाँव ।
पर पंजीकृत डाक से, मिलते रहे तनाव ।।
नष्ट सभी सपने हुए, ध्वस्त सभी अरमान ।
फसलें चौपट देखकर, मरते रोज किसान ।।
गुमसुम ह्यहरियाह्न सोचता, मन में भरकर आह ।
कैसे होगा हे प्रभू, अब बड़की का ब्याह ।।
रहे झांकते हर समय, इधर-उधर सौ बार ।
पर क्या देखा झांककर, मन के भी उस पार ।।
जहाँ नहीं होती कलह, सुबह-शाम दिन-रात ।
उस घर में रहती सदा, खुशियों की बरसात ।।
कैसे सँभलें भूख के, बिखरे सुर-लय-ताल ।
नई सदी के सामने, सबसे बड़ा सवाल ।।
सपनों के बाजार में, ह्यरमुआह्न खड़ा उदास ।
भूखा-नंगा तन लिए, कैसे करे विकास ।।
अट्टहास करता रहा, जालिम भ्रष्टाचार ।
डिग्री थामे हाथ में, युवा वर्ग लाचार ।।

(संपर्क - 94128 05981)

# गाँव गरीबों के लिए अब भी दिल्ली दूर

– कुमार शैलेंद्र

इन्द्रधनुष के रंग-सी आभामय मुसकान।
कुछ तो अब भी छींट दे अपना हिन्दुस्तान।।
चाल चलन बदले बिना, चिंतित चलनी-सूप।
दरपन इतना अटल क्यूँ, रंगहीन-बदरूप।।
दुनिया मुझ जैसे चले, ऐसी लगती सोच।
होगा विषधर केंचुआ, क्या संभव यह लोच।।
विष प्रत्यंचा जीभ पर, शब्द अग्नि के बान।
गाली मंत्रों-सी ध्वनित, जैसे अग्निपुरान।।
चक्की में पिसते रहे, हर मजदूर-किसान।
कुर्की घर की डाँटती, बाकी कर्ज.लगान।।
मूली-गाजर सदृश हैं, साग-पात इंसान।
सुनती गली मुनादियाँ, तलवारें भगवान।।
कूड़ा कचरा क्रोध को, फेंक करें प्रतिरोध।
तब खोलेंगे खिड़कियाँ, गृहजन बन मनबोध।।
गोरखधंधे जो करें, श्रीमन्-वही हुजूर।
गाँव गरीबों के लिए, अब भी दिल्ली दूर।।
धूप-धुआँ-ध्वनि-धुंध से, धरती धर्म कठोर।
घाटी में पगली हवा, अब तक आदमखोर।।
बिना विचारे बढ़ गया, यदि मैत्री का हाथ।
देना पड़ता कर्ण को, दुर्योधन का साथ।।
सच्चाई की राह में, मिलता है संत्रास।
गांधी खाते गोलियाँ, ईसा चढ़ते क्रास।।
आँखों का पानी मरा, मरी दिलों की पीर।
रोम-रोम हम हो गये, पत्थर की जागीर।।
तार-तार निष्ठा हुई, खंड-खंड विश्वास।
राजमहल जब से बना, अंधों का आवास।।
सरवर में हैं मछलियाँ, बगुले पहरेदार।
कहाँ गये श्रीमान जी, किधर बड़े सरदार।।
पीना ही यदि चाहते मधुरामृत मधुघोल।
क्षणभंगुरता माँगती तोल तोल के बोल।।
मूल्य चढ़े आकाश तो बढ़े जिंस व्यापार।
गिरे आचरण मूल्य तो जन तन मन बाजार।।
प्रकृति पुष्प का क्यों मिटे कैसे मिटे बबूल।
मानुष तन कितने मनुज हैं जो बिना उसूल।।
अपराधी निधिपति लगें अफसर, नौकरशाह।
जन आरोपित कटघरे, चमचे कुशल गवाह।।
भीड़तंत्र में लोक की रीढ़ हुई कमजोर।
भेंड़, भेड़ियों की तरह, और सिपाही चोर।।
बस्ती-बस्ती चल रहा जंगल का कानून।
कातिल कुर्सी पी रही हर वंशी का खून।।
गाँवों के ही रक्त पर दिल्ली में है ऐश।
घोटालों में तोड़ता दम गुरु भारत देश।।
कलुषित जन स्वाधीनता देश प्रेम से घात।
बिछे जहाँ संत्रास की सतरंगिनी बिसात।।
दिल्ली अति ऊँचा सुने, पथ अंधों की बात।
बोल-बोल जनता थकी गूँगों भरी जमात।।
सोनचिरैया खेत में थककर लहूलुहान।
घाटी की बन्दूक से घायल हिन्दुस्तान।।

# नरेश सक्सेना के शब्दों में बच्चे

**एक**

*नफरत पैदा करती है नफरत*
*और प्रेम से जनमता है प्रेम*
*इंसान तो इंसान, धर्मग्रंथों का यह ज्ञान*
*तो मिट्टी तक के सामने ठिठककर रह जाता है*
*मिट्टी के इतिहास में मिट्टी के खिलौने हैं*
*खिलौनों के इतिहास में हैं बच्चे*
*और बच्चों के इतिहास में बहुत से स्वप्न हैं*
*जिन्हें अभी पूरी तरह देखा जाना शेष है*
*नौ बरस की टीकू तक जानती है ये बात*
*कि मिट्टी से फूल पैदा होते हैं*
*फूलों से शहद पैदा होता है*
*और शहद से पैदा होती है बाकी कायनात*
*मिट्टी से मिट्टी पैदा नहीं होती।*

**दो**

*भूख सबसे पहले दिमाग खाती है*
*उसके बाद आंखें*
*फिर जिस्म में बाकी बची चीजों को*
*छोड़ती कुछ भी नही है भूख*
*वह रिश्तों को खाती है*
*मां का हो बहन या बच्चों का*
*बच्चे तो बेहद पसंद है उसे*
*जिन्हें वह सबसे पहले*
*और बड़ी तेजी से खाती है*
*बच्चों के बाद*
*फिर बचता ही क्या है ।*

**तीन**

*कुछ बच्चे बहुत अच्छे होते है*
*वे गेंद और गुब्बारे नहीं मांगते*
*मिठाई नहीं मांगते, जिद नही करते*
*और मचलते तो है ही नहीं*
*बड़ों का कहना मानते हैं*
*वे छोटों का भी कहना मानते हैं*
*इतने अच्छे होते हैं*
*इतने अच्छे बच्चों की*
*तलाश में रहते हैं हम*
*और मिलते ही उन्हें ले आते हैं घर*
*अक्सर, तीस रुपये महीने और खाने पर।*

*(संपर्क - 9450390241)*

# बजरंग बिश्नोई के शब्दों में ईश्वर

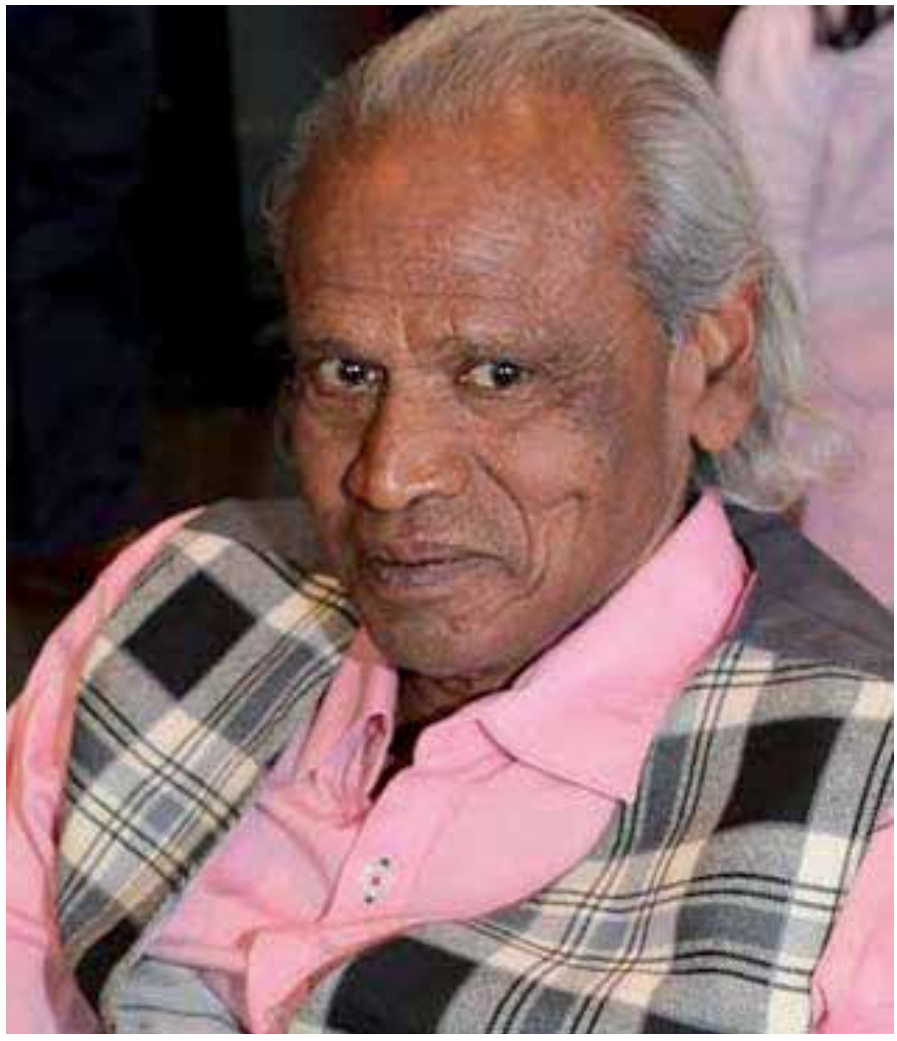

**एक**

*ईश्वर न्यायप्रिय है*
*ईस्वर के यहाँ न्याय है अन्याय नही*
*ईश्वर के यहाँ देर है अन्धेर नहीं*
*कभी कभी अन्याय हो जाता है*
*और कभी कभी अन्धेर भी*
*ईश्वर वाकि फ है इन सब बातों से*
*और इसलिये वो निकला भक्त वत्सल*
*अपने भक्तों यहाँ तक अभक्तों का*
*भी हाल जानने*
*पहली गली से मुड़ते ही*
*दूसरी सकरी गली में एक टूटे चबूतरे पर*
*बैठे देखा एक अंधे को*
*वह नाक से सूंघ रहा था बसंत को*
*बसंत की हवा काफी थी उसे*
*यह बताने को कि बसं त आगया है*
*ईश्वर ने देखा इस अंधेर को*
*और तुरंत दिया वरदान उसे*
*दृष्टि के साथ साथ गीत संगीत का भी*
*उसने देखा पहली बार दुनिया को*
*और आँखें फाड़े की फाड़े ही रह गया*
*उसने फूट फूट कर रोना शुरू कर दिया*
*और यही रुदन गायन के तौर पर*
*ईश्वर राग के नाम से मश हूर हुआ।*

**दो**

*इसके बाद भी ईश्वर ने चालू रखा*
*धरती के गली कूंचों को नापना*
*एक भूखा कृश काय फटे हाल भिखारी जैसा आदमी*
*अपनी टूटी टाटी झुग्गी के सामने खड़ा था*
*ईश्वर ने अपनी रहमत दिखाते हुये*
*उसे पेश किया उम्दा भोजन*
*बढ़िया कपड़ों की पोशाक*
*और झुग्गी की जगह*
*खड़ी कर दी एक सात मंज़िला शानदार इमारत*
*आहत हो गया वह देख कर ईश्वर की ये हरकत*
*और वह लोटने लगा चीख चीख कर*
*सर पटक पटक कर धूल में।*

**तीन**

*ईश्वर को थोड़ा आगे बढ़ते ही मिला*
*एक जर्जर बूढ़ा*
*जो एक टुटही साइकिल घसीट रहा था*
*ईश्वर ने बढ़ कर थाम लिया उसका हाथ*
*साइकिल के हैंडल पर*
*और थमा दी उसे एक चमाचम सामने खड़ी*
*कर दी गई बी एम डब्ल्यू कार की चाबी*
*राजी न हुआ ये बूढ़ा भी*
*और फटी फटी आँखों से देखने लगा ईश्वर को*
*फटी फटी आँखों से ऐसे ही देखा*
*हजारों लाखों ने ईश्वर को*
*आखिर में लू लपट से फड़फड़ाते हुये*
*पोस्टर की तरह फट गया ईश्वर*
*इस अभियान में*
*तो ईश्वर ने अपना अभियान स्थगित कर दिया*
*बैठा है तब से लेकर ढेर सारे मुआवजे का पहाड़*
*और उसे यह नही पता चला कि*
*कोई भी क्यों कुबूल नही करता*
*ईश्वर का मुआवजा।*

— शहंशाह आलम

## बोआई

*मैं जो एक कवि हूँ देहाती इस बीहड़-विकट समय का*
*बोता हूँ यहाँ की जमीन में बीज उम्मीद से भर-भरकर*
*मन पर से दुःख के कठिनाई के भारी इस्पात को हटाते*
*आश्चर्य जमीन ने मुझे अन्न नहीं दिए बीजों के बदले*
*न मीठे फलों से भरे-लदे वृक्ष दिए अनगिन-असँख्य*
*न रोगमुक्त वनस्पतियाँ न हरी पत्तियाँ न लहराती घासें दीं*
*जमीन ने इस बोआई के बदले अस्त्र-शस्त्र दिए औजार दिए*
*अमीरों बलात्कारियों हत्यारों चोरों की इन सरकारों के विरुद्ध*
*जनता की भीड़ों के बीच निर्णायक लड़ाई का बिगुल बजाने।*

## तुम्हारे नाम लिखता हूँ

*तुम्हारे नाम लिखता हूँ आकाश*
*जो मेरा ठिकाना है सदियों से*
*जीवन से, फसल से, पानी से भरा*
*लेकिन तुम हो कि अपना तलघर*
*छोड़ना नहीं चाहते जो है*
*आदमियों की उदासी से*
*आदमियों के झूठ से डरा।*

## कहाँ मिलेगी पृथ्वी

*तोते कुतरते हैं अमरूद*
*अपने इस काम में डूबे हुए मग्न*
*पृथ्वी के दुखों को कम करते*
*आदमी तोड़ता है रोज थोड़ा-थोड़ा इस पृथ्वी को*
*अपने लिए अँधेरे को जरा-सा और बढ़ाता हुआ*
*यह पृथ्वी तोतों के लिए एक घर है हमेशा से*
*आदमी के लिए एकांत में पड़ी एक स्त्री है शायद*
*जिसे वह अपनी वस्तु समझता रहा है बलात्कारी*
*एक दिन आदमी पूछता फिरेगा कहाँ पर है पृथ्वी*
*तोते हँसेंगे गिलहरियाँ झल्लाएँगी नेवले बिदकेंगे*
*आदमी के इस प्रश्न पर इसलिए कि पृथ्वी पर*
*कोई उत्तर कहाँ बचा रहेगा ऐसे आदमियों के रहते।*

*(संपर्क - मोबाइल : 09835417537)*

## तब भी मैं

*द्वार जो खुल रहा है प्राचीन का*
*इस द्वार के भीतर असँख्य प्राचीन तोते*
*प्रेम कर रहे हैं अपने प्राचीन तरीके से*
*अंतहीन बार प्रेम की सहजता को बचाए*
*आप कहना चाहें तो कह दें मेरे बारे में*
*कि प्रेम को लेकर यह आदमी हमेशा से*
*किसी आदिम प्रार्थना की तरह रहा है*
*तब भी मैं प्रेम के सारे प्राचीन तरीके*
*बचाए रखना चाहूँगा इस बेहद पुराने घर में*
*तोतों के रहस्यों से भरे प्रेम को देखकर*
*जबकि आप रोज किसी से प्रेम करते हैं*
*रोज हत्या कर देते हैं नए प्रेम में उतावले।*

## जुड़ता हूँ

*मैं जुड़ता हूँ अटूट तुम्हारी आत्मा से*
*तुम जुड़े हो जिस तरह हरे केले के पत्तों से*
*शहद के पुष्ट छत्तों से मासूम गिलहरियों से*
*जुड़ता हूँ प्रकट तुम्हारे इर्द-गिर्द की घासों से*
*जिन पर तुम चलते हो दबे पाँव चिड़ियों-सी*
*तुम्हारे भीतर रोज खुल रहे नए द्वार से*
*कमल के बीजकोष से वनस्पतियों से*
*नाभि पर उग रहीं उत्सुक जड़ों से जुड़ता हूँ*
*जुड़ता हूँ तुम्हारी परछाइयों से अपनी परछाईं*
*मानते हुए*
*देहें ऐसे ही तो मिलती हैं अनंत-अनंत*
*समय के लिए।*

# मुक्त होती औरत

*गोरापन, वह भी सात दिनो में,*
*मेरी त्वचा से मेरी उम्र का पता ही नहीं चलता,*
*अब पाइए जवानी की रौनक दोबारा,*
*विज्ञापनी मायाजाल में उलझती 'वह',*
*कभी बालों की रंगती*
*कभी चेहरे को चमकाती*
*सांवलेपन को कई परतों में छिपाती,*
*नैनों को कुछ और 'कजरारा' करती*
*बिंदिया से रूप निखारती,*
*चेहरे की झुर्रियां कहीं झलक न जाएं,*
*कहीं वजन अनुपात से बढ़ न जाए,*
*कोई सफेद बाल दिख न जाए।*
*बहुत - सी गैरजरूरी चिंताएं*
*जो ओढ़ा दी गई हैं 'उसे'*
*उसे खूबसूरत दिखना है 'उनकी' नजर में,*
*और 'वे' खुश हैं-*
*'मुक्त होती औरत' को 'बंधते' देखकर।*

— अंशु बाजपेयी

# एक अधूरापन

*कहीं कुछ है,*
*जो कटोचने लगता है उसे,*
*सबकुछ के बावजूद*
*बना रहता है उसके साथ एक अधूरापन।*
*क्या है, जिसकी कमी खलती है,*
*जबकि घर उसका है,*
*पति उसका, बच्चे उसके,*
*ये दुनिया - जिसकी वह मालकिन है,*
*अजनबी-सी क्यों लगती है!*
*क्यों लगता है उसे*
*कि जरूरत की चाबी से*
*चलाई जा रही है वह,*
*किसी खिलौने की तरह!*
*जैसे खिलौना चाबी भरते ही*
*खुश कर देता है सबका दिल,*
*थिरकने लगता है,*
*ताली बजाता है,*
*फिर मन भरने पर*
*रख दिया जाता है अलमारी में,*
*-वैसे ही वह,*
*भरी गई चाबी के अनुशासन में*
*कम या ज्यादा ....*
*चलती रहती है*
*और फिर रख दी जाती है*
*एक तरफ,*
*अब उसे इंतजार है,*
*'चाबी' के खो जाने का।*

*(संपर्क - 9982448126)*

— ओमप्रकाश

# मैं कवि हूं

*क्या सड़ते, सूखते गोबर को कूरेदकर*
*उसमें पनप रहे गोबरीले कीड़े को ढूंढ़ना कविता है*
*या भिनभिनाती मक्खियों, टिमटिमाते पटबीजनों*
*मिमयाती बकरियों, और टरार्ते मेंकों पर लिखना*
*नवीनता का परिचायक है।*
*घर की छत पर बेकार पड़े टायर में*
*सड़ते हुए पानी से जीवन की तुलना करूं*
*तो क्या नया कवि बन सकता हूं?*
*या किसी वातानूकूलित कमरे में बैठकर*
*ग्रामीण कृषक जीवन की गवारूं शब्दावली के*
*बनावटी बीज डालकर अपने जबरन अनुभव से*
*सींचने पर कविता का प्रस्फुटन होगा।*
*ठंड से ठिठुरते किसी भिक्षुक की गुदड़ी से आती*
*बदबू को*
*इत्र की तरह कविता पर छिड़कूं*
*तो क्या तब अच्छी कविता बनेगी?*
*या उसकी वह गुदड़ी भी छीन लूं*
*ताकि उसे ठंड से और अधिक पीड़ा हो*
*और मैं उस पीड़ा को अपनी कविता में उतार सकूं।*
*या क्यों न मैं कुछ और नया करने का प्रयास करूं*
*दर्द से बिलखते कोढ़ी के घाव पर तो*
*पहले भी लिखा गया होगा*
*मैं उसके रिसते घाव में उंगली डालकर*
*और दर्द निकालूंगा*
*और उसे स्याही के रूप में कविता में प्रयोग करूंगा*
*ताकि दर्द वास्तविक लगे।*
*मैं अपने दिमागी शौचालय के पाट में रेंगते*
*घिनौने कॉकरेची विचारों को,*
*सड़ांध मारती मानसिकता को,*
*नए-नए रूप में कविता में प्रस्तुत करूंगा,*
*और दूसरों के प्रति अपनी अहंकारी भड़ास को*
*निकालूंगा।*
*मैं हिडिम्बा नहीं, ताड़का कविताएं लिखूंगा*
*अपने घर की दीवारों के पलस्तर को*
*जबरन गिराऊंगा और उसके नीचे दबी*
*कविता को ढूंढ़ निकालूंगा।*
*कहीं काले स्याह अंधेरे में या दिनदहाड़े*
*किसी संरक्षित वन क्षेत्र की लुच्ची, भूलभूलैया*
*झाड़ियों*
*या किसी लवर्स पार्क के छिछोरे कोने में*
*किसी बेहया पेड़ की ओट में नर्म सेक्सी घास पर*
*या किसी पांच तारा होटल के बेशर्म बिस्तर पर*
*लुटती आबरू के अलग-अलग एंगल से*
*जानदार-शानदार, शमीर्ले-भड़कीले चित्र खीचूंगा*
*शायद कोई एंगल तो लोगों को पसंद आए।*
*मैं काव्य को नया आयाम दूंगा*
*नई पुरानी गालियों को*
*अलंकार की तरह प्रयोग करूंगा*
*मैं गायब होते गिद्धों, तितलियों, बुलबुलों और गोरैया*
*को ढूंढने*
*जंगल तक जाऊंगा,*
*चिड़ियों के घोंसलों में चिलगोजे रखूंगा*
*कौवे को ककरोंदे खिलाऊंगा*
*मुरेले की बेलों पर बाजों को आमंत्रित करूंगा*
*शेरों को परास्त करने के लिए*
*भेड़ियों और सियारों से गठबंधन करूंगा।*
*शुष्क, ऊसर, रेगिस्तानी विषयों में भी*
*काव्य का सोता ढूंढ निकालूंगा*
*कविता को ढूंढने अफ्रीका के जंगलों में भी*
*जाना पड़ा ता जाऊंगा*
*मेडागास्कर से गंगा बहानी पड़े तो बहाऊंगा*
*मैं नया कवि हूं, किसी भगीरथ से कम तो नहीं।*

*(संपर्क - 9968318473 / 9013501167)*

पाठ्यक्रम से मंच तक कितना कबाड़ा

# साहित्य में माफिया, सत्यानाश

**पाठ्यक्रमों में पहले की तरह स्तरीय कविताओं का चयन नहीं होना चिंताजनक है। साहित्य में भी माफिया प्रवृत्ति इसके लिए जिम्मेदार हैं। हमारे समय का यह एक बड़ा सामाजिक अपराध है। जब तक पाठ्यक्रमों की चयन समितियों में ईमानदार चयनकर्ता, शीर्ष साहित्यकार शामिल नहीं होंगे, इसी तरह कबाड़ा होता रहेगा। आधुनिक, उत्तरआधुनिक होने की ललक ने हमारे आलोचकों को गुमराह कर दिया है। लुगदी साहित्य और लुगदी मंचों के कारण लोगो की मानसिकता बदल गई है।**

**गिरीश पंकज**

पाठ्यक्रमों में स्तरीय कविताओं के अभाव के पीछे अधिकारी, राजनीतिक हस्तक्षेप के साथ -साथ साहित्य के वे माफिया भी जिम्मेदार हैं, जिनके लिए साहित्य साधना नहीं, अपनी छवि चमकाने का माध्यम रहा। आज भी ऐसे लोग सक्रिय हैं और पाठ्यक्रमों का सत्यानाश कर रहे हैं। आजादी के एक-डेढ़ दशक तक तो कविताओं के चयन में कुछ शुचिता कायम थी, लेकिन जैसे ही अधिकारीनुमा लेखक या लेखकनुमा अधिकारी बढ़ने लगे, वे पाठ्यक्रमों में अपने-अपने परिचितों को समाविष्ट करने लगे। कहीं-कहीं तो वे खुद भी पाठ्यक्रमों का हिस्सा बन गए। ये वे लोग थे, जो आईएएस किस्म की प्रजाति के कहे जाते हैं। ऐसे लोग आज भी सक्रिय हैं। इसका खामियाजा साहित्य को, और वर्तमान पीढ़ी को भुगतना पड़ा।

कविता के नाम पर ऐसी-ऐसी कविताएँ परोसी गईं, जिनका अर्थ भी किसी की समझ से परे था। हमारे साहित्य के महान पुरोधाओं को बाहर का रास्ता दिखा कर नए पाठ्यक्रमों के नाम पर अनेक निम्नस्तरीय रचनाकारों को शामिल करना सामाजिक अपराध है। आज भी अनेक प्रतिभाशाली, तेजस्वी

कविताएँ विद्यमान हैं, लेकिन उन्हें पाठ्यक्रमों में स्थान नहीं मिलता क्योंकि ये सर्जक न तो किसी अफसर के पास जाएंगे और न किसी राजनेता का चरण चुंबन करेंगे। जब तक पाठ्यक्रमों की चयन समितियों में ईमानदार चयनकर्ता शामिल नहीं होंगे, इसी तरह का कबाड़ा होता रहेगा और छात्रगण दोयम दर्जे की रचनाओं को प्रथम श्रेणी की रचना समझ कर उसको रटने पर विवश रहेंगे।

जहां तक स्तरीय कविताओं के पाठक सिमटते जाने का प्रश्न है, श्रेष्ठ कविताएं सदियों से श्रुतियों में, लोक स्मृतियों में सुरक्षित रही हैं। आगे भी रहेंगी लेकिन अभी का जो समय है, वो कविताओं के लिए संक्रमण का समय है। इस समय तथाकथित नई कविताओं का बोलबाला है। उसे ही नए जमाने में सौंदर्यबोध की तरह प्रस्तुत किया जा रहा है। छंद बहिष्कृत है और गद्यरूप में लिखी जा रही (अ) कविताएं हर कहीं प्रमुखता प्राप्त कर रही हैं। इस कारण वो आम पाठक जिसका मन छंदानुरागी रहा है, वो इन नई कविताओं से दूर भागने लगा है। हालत यह हो गई है कि अगर किसी के बारे में पता चले कि वह कवि है, तो बाकी लोग उससे किनारा ही कर लेंगे। वैसे स्तरीय कविताओं के मुट्ठीभर पाठक अभी विद्यमान हैं। यह और बात है कि वे सीमित हैं, लेकिन हैं जरूर। वैसे भी श्रेष्ठता को पसंद करने वाले हर काल में कम रहे हैं। मसखरी, प्रहसन, फूहड़ता के प्रति समाज का एक बड़ा वर्ग आकर्षित रहा है। और इन दिनों तो यह आकर्षण अपने चरम पर है। लोक रुचियों को विकृत करने में सरकारी संस्थाओं का और समाज का खा-पीकर अघाया एक वर्ग जिम्मेदार हैं। हर जगह हास्य कवि सम्मेलनों का दौर चल रहा है। चुटकुलों को तुकबंदी में पिरो कर लुगदी-मंचों पर कविताएँ प्रस्तुत करने वालों की बाढ़ है। लोग उन्हें ही सुनते है और हँसते हुए तालियां बजाते हैं। ऐसा कर-कर के लोग ऐसी ही फूहड़ताओं को कविता समझने लगे हैं। और अब उसी के आदती हो चुके हैं। मीडिया में भी हम देखते हैं कि हास्य कवियों को आमंत्रित किया जाता है। देश भर में कवि सम्मेलन एक जैसे हो रहे हैं। कुछ नाम हैं, जो कविता कम, मसखरी अधिक करते हैं। लोगों को इसी में मजा आता है। ऐसे लुगदी-मंच पर कोई गीतकार, ग़ज़लकार बहुत कम टिक पाता है। लुगदी साहित्य और लुगदी मंचों के कारण लोगो की मानसिकता भी वैसी हो गई है। इसके परिष्कार के लिए जो कुछ किया जा सकता है, उसके लिए जरूरी यही है कि 'कविकुम्भ' जैसे प्रयास हों और मंचों पर लोक-मंगल की कविता रचने वाले सृजक ही प्रस्तुत किए जाएं। वहां फूहड़ता को स्थान न मिले, वहां गलेबाजी प्रमुख न हो, वहां केवल रचना महत्वपूर्ण हो, उसके भाव महत्वपूर्ण हों। यह कठिन कार्य है, लेकिन किया जाना चाहिए। धीरे-धीरे श्रोताओं का मन भी बदलेगा।

समकालीन हिंदी साहित्य में खासतौर से छंदयुक्त कविता, गीत-नवगीत के प्रति आलोचकों की भूमिका भी आज सवालों में है। आधुनिक और उत्तरआधुनिक होने की ललक ने हमारे आलोचकों को गुमराह कर दिया है। नई पीढ़ी भी उनकी मानसिकता का शिकार हो कर उसी राह पर चल रही है। छंदबद्ध कविता को मध्ययुगीन मानसिकता समझने वाले नए दौर के हिंदी आलोचकों ने गद्यरूप में लिखी जा रही कविताऑ को ही महत्व दिया। साठोत्तरी कविता और उसके बाद अब तक लिखी जा रही गद्य कविताओं को ही नई धारा का साहित्य बताया गया। आलोचकों ने कविता के नए प्रतिमान के रूप में अपने विमर्शों के केंद्र में गद्य-कविता लिखने वालों पर बड़े-बड़े लेख लिखे। गद्य कवियों में अनेक अभिजात्य वर्ग के लोग शामिल थे। उनके अपने राजनीतिक-प्रशासनिक प्रभाव थे, उस कारण उन्हें आलोचकों ने अधिक महत्व दिया।

उस दौर में, जब गद्य-कविता लिखी जा रही थी, तब भी गीत नवगीत में रूपांतरित हो रहा था, लेकिन उसको जानबूझ कर उपेक्षित किया गया। धीरे-धीरे पाठक भी उससे दूर होते गए। जब किसी की चर्चा ही न होगी, तो उस पर बात भी कैसे हो पाएगी? इस कारण छंदयुक्त कविताएं और गीत-नवगीत हाशिये पर चले गए और साहित्य के केंद्र में आ गई गद्य कविता। अपने समय की एक बड़ी चर्चित पत्रिका में चार दशक पहले एक कविता छपी थी - ''मेरी धोती में आग लग गई / मेरी जिंदगी बर्बाद हो गई।'' ऐसी कविताएँ छाप-छाप कर कुछ पत्रिकाऑ ने कविताओं की जिंदगी ही बर्बाद कर दी। आज भी अनेक समकालीन पत्रिकाओं में प्रमुखता गद्य कविताओं को दी जाती है। जबकि छंदबद्ध कविताओं और गीतों के माध्यम से भी नई चेतना मुखरित हो रही है। लेकिन उसे बहुत कम 'स्पेस' मिल रहा है। इसके लिए मैं हिंदी आलोचकों को ही दोषी मानता हूँ, दोषी नहीं, उन्हें अपराधी कहना सही होगा।

आलोचक साहित्य की दशा और दिशा तय करते हैं। उनको पढ़ कर ही नया पाठक अपनी दृष्टि विकसित करता है। इसलिए मुझे लगता है कि अब नये आलोचक भी सामने आएं, जो छंदबद्ध रचनाओं के महत्व पर विमर्श करें। मुझे उम्मीद है कि 'कविकुम्भ' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से ही छान्दसिक-कविता की वापसी हो सकती है। छंदों के माध्यम से नया चिंतन सामने आ रहा है। और छंद की विशेषता यही है कि वह स्मृतिलोक में बस जाती है। आज जो भी कविताएं अमर हैं, वह छंदबद्ध ही है या लयप्रधान हैं।

(संपर्क : 9425212720)

## घोंसले में जब कभी दो-चार दाने हो गए

*हम तो उस उड़ते परिंदे के दीवाने हो गए।*
*प्यार की हर छाँव में जिसके ठिकाने हो गए।*
*मैं भी चिड़ियों की तरह बेफिक्र हो जीता रहा*
*घोंसले में जब कभी दो-चार दाने हो गए।*
*हौसला है आसमानी, पंख छोटे हैं तो क्या*
*सीख ले कर पंछियों से हम सयाने हो गए।*
*जिसने सीखी है परिंदों से कला परवाज की*
*रंग उसकी जिन्दगी के ही सुहाने हो गए।*
*हम अकेले ही चले जब साथ न कोई रहा*
*बस इसी इक बात पर हम पे निशाने हो गए।*
*कोयलों की कूक सुन कर याद फिर आया कोई*
*यार को देखे हुए कितने जमाने हो गए।*
*दर्द जितने भी मिले उनका करूँ मैं शुक्रिया*
*जिंदगी संगीत है ये सब तराने हो गए।*
*एक पल दीदार को कितने बहाने हो गए*
*प्यार करने के लिए वो भी सयाने हो गए।*
*तुमने मेरे शेर की तारीफ की तो देख लो*
*ऐसे-वैसे और कैसे अब फसाने हो गए।*
*उड़ सके जो भी परिंदों की तरह पंकज यहाँ*
*ऐसे हर इनसान के ढेरों फसाने हो गए।*

## हतोत्साहित कर रहे मंच और मीडिया

# कविता के लिए नये प्रतिमान और नयी आलोचना पद्धति की जरूरत

कृष्ण सुकुमार

मुझे ऐसा नहीं लगता कि स्तरीय कविता के पाठक सिमटते जा रहे हैं। इस समय कविता अपने कई रूपों में लोकप्रियता प्राप्त कर रही है, जैसे छन्दहीन नयी कविता, ग़ज़ल, नवगीत, दोहे, हायकू इत्यादि। नेट जैसी सुविधाओं के कारण आज नेट पर ढेरों नेट पत्रिकाएँ और ब्लॉग इत्यादि पर अच्छी और बेकार दोनों तरह की कविताएं खूब लिखी जा रही हैं। लेकिन यह भी सच है कि अच्छी कविताओं का पाठकवर्ग भी इसके कारण बढ़ा ही है और पाठक अच्छी कविताओं को ढूंढ ढूंढ कर पढ़ते हैं। स्तरीय कविताएं, स्तरीय पत्रिकाएं भी छाप रही हैं और पुस्तकों के रूप में भी स्तरीय संग्रह छप रहे हैं।

देखिये, इस बारे में मेरा विचार है कि हर युग में स्तरीय कविता का एक खास पाठक वर्ग होता है और वो सीमित ही होता आया है। हिंदी कविता के मंचों की स्थिति जरूर अब पहले जैसी नहीं रही। मंच पर अवश्य ही कविता के नाम पर फूहड़पन परोसा जा रहा है जिसका एक अलग श्रोता या पाठक होता है। आज मंचों से स्तरीय कविता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। न वो श्रोता आपकी स्तरीय कविता को स्वीकारने वाला है। निश्चित रूप से स्तरीय कविता को मंच और मीडिया सर्वाधिक हतोत्साहित कर रहे हैं। अगर फूहड़ कविताओं की जगह मंच और मीडिया अनवरत स्तरीय कविताओं को प्रसारित करने लगे तो धीरे-धीरे ही सही, एक दिन अच्छी कविता बड़ी मात्रा में अपना पाठकवर्ग तैयार कर सकती है।

ऐसा लगता है कि आधुनिकता के नाम पर आलोचकों ने नयी कविता के सामने गीत और नवगीत जैसी छंदयुक्त रचनाओं से दृष्टि फेर रखी है। नयी कविता के बरअक्स छंदयुक्त रचनाओं को अभिव्यक्ति का आउट ऑफ डेट माध्यम मान कर वे गीत नवगीत की लगातार उपेक्षा करते रहे। वस्तुतः इसका एक कारण यह भी हो सकता है,

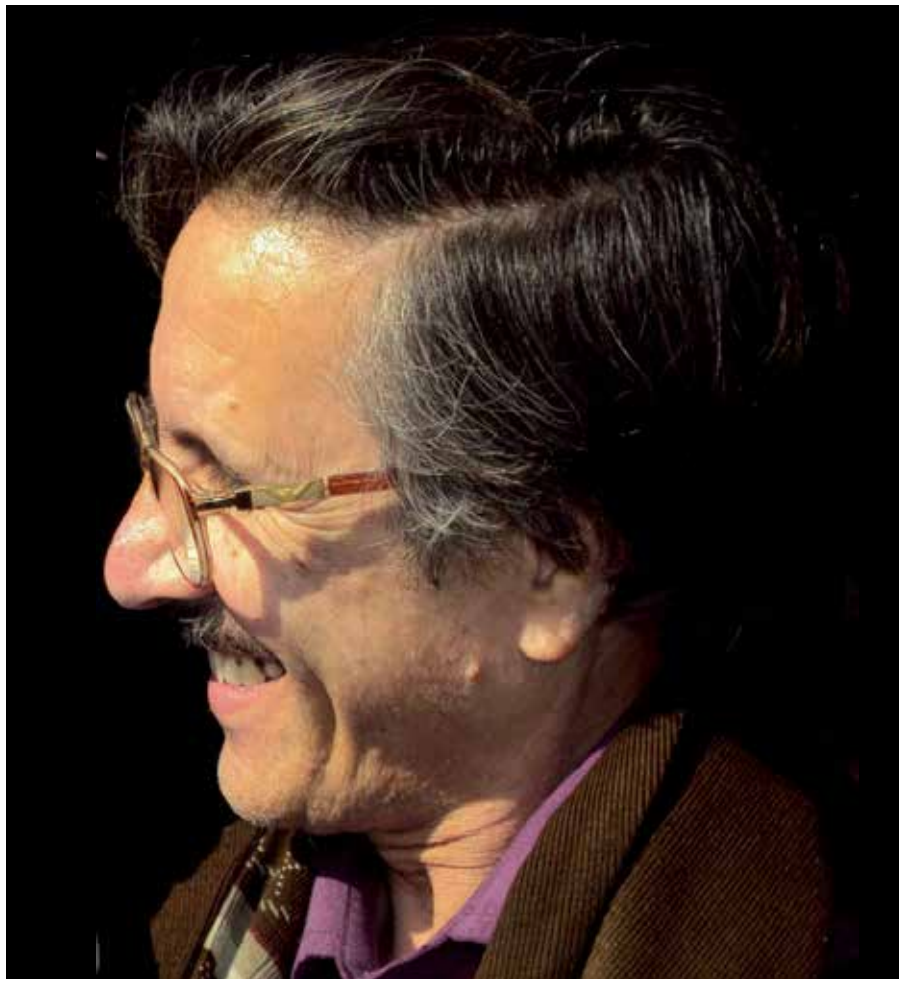

जैसा कि माहेश्वर तिवारी ने भी कहीं कहा है कि 'कविता और आलोचना दोनों आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य विचारों के इतने आतंकपूर्ण प्रभाव में रहे कि अपनी जमीन की ओर देखने के लिए उनके पास अवकाश ही नहीं था'! नयी कविता वास्तव में गद्य कविता है जो किसी शिल्प विशेष या छंद में बँध कर नहीं चलती, उसका मुख्य उद्देश्य है सप्रेषणीयता और इसमें परम्परागत कविता से हट कर नए मूल्यों और विधान का प्राधान्य होता है।

यह संवेदनाओं को नए बिम्बों और नए मुहावरे में व्यक्त करने की ओर प्रवृत्त है। नयी कविता की इन कुछ विशेषताओं को रेखांकित करने के पीछे मेरी मंशा यह है कि नवगीत भी इस मायने में नयी कविता से पीछे नहीं हैं, सिवाय इसके कि उसमें छंद और लय का भी ध्यान रखा जाता है। गीत की संवेदना और शिल्प कविता की शिल्प और संवेदना

से और किसी भी प्रकार कमतर नहीं आंका जा सकता। छंदयुक्त कविताओं के प्रति आलोचकों का यह दुराग्रह इसलिए भी हो सकता है कि छंदयुक्त कविताओं को महत्व देने से कहीं नई कविता का प्रभाव ही कम न हो जाय। किन्तु मैं समझता हूँ कि अब स्थिति उस प्रकार की नहीं रही। निःसंदेह नई कविता की चकाचौंध में आलोचकों और पत्र पत्रिकाओं ने छंदयुक्त कविता को खारिज कर रखा था, आजकल नवगीत ही नहीं ग़ज़ल को भी हंस, पहल, कथादेश जैसी पत्रिकाएं सम्मान के साथ स्थान दे रही हैं और एक भरापूरा पाठक वर्ग भी छंदयुक्त कविताओं के प्रति पूरा आकर्षण रखता हैं। आज ग़ज़ल और नवगीत समकालीन सामाजिक यथार्थ को, मानवीय संवेदनाओं और अनुभूतियों को नए बिम्बों, नए कथ्य और नए शिल्प के साथ व्यक्त करने में कहीं भी नयी कविता से पीछे नहीं हैं।

वस्तुतः छंदयुक्त कविताओं के लिए एक नई आलोचना पद्धति की जरूरत है जिसमे आलोचना के नये प्रतिमानों की स्थापना हो सके जिसके माध्यम से नवगीत और ग़ज़ल का सही सही मूल्यांकन सम्भव हो सके। और मैं समझता हूँ इस दिशा में नया आलोचक वर्ग गतिशील है।

(संपर्क : 9917888819)

## पानी के निशान

*बारिश में भीगी हुई चीजें*
*सूख जाती हैं !*
*पानी के निशान नहीं सूखते कभी !*
*नींदें टूट जाती हैं हमेशा के लिए*
*छोड़ कर नितांत अकेला !*
*आते जाते रहते हैं स्वप्न*
*नहीं टूटते कभी !*
*शब्द छोड़ देते हैं अंततः*
*एक दिन साथ !*
*अर्थ नहीं छोड़ते पीछा*
*भरते रहते हैं प्रतिदिन नये नये श्रृंगार !*
*मेरा होना पूर्णतः अस्थिर है*
*जीवन अविछिन्न रूप से स्थिर !*
*समय बीतता है*
*शेष कुछ भी नहीं बीतता !*

## एक हताशा के साथ

*खो गया है कुछ*
*बहुत याद करता हूँ... क्या ?*
*लेकिन याद नहीं पड़ता !*
*खो गया है कुछ जिसे ढूँढ़ रहा हूँ*
*निरीह बेचैनियों के साथ...*
*मिल कर जाने वालों के बाद*
*उनसे हुई खाली जगह की अस्पष्ट गूंज में !*
*खो गया है कुछ जिसे ढूँढ़ रहा हूँ*
*एक हताशा के साथ...*
*किसी पर बहुत गुस्सा उतारने के बाद*
*अंतस्थल में उभर आये*
*भीतर तक धँसे हुए किसी अँधेरे खड्ड में !*
*खो गया है कुछ जिसे ढूँढ़ रहा हूँ*
*गहरे अफसोस के साथ...*
*बहुत विवशता में जुड़े हुए निरीह हाथों को*
*उपेक्षा से दुत्कारने के बाद*
*अपने इर्द गिर्द लिपटी हवा की सिलवटों के बीच*
*ठहरी हुई कातर नमी में !*
*खो गया है कुछ जिसे ढूँढ़ रहा हूँ*
*बड़ी दयनीयता के साथ...*
*अपनी चादर पर आ पड़ी ओस की बूँदों को*
*क्षणिक आवेश में झटक कर फेंक देने के बाद*
*कुछ सूखे धूलिकणों से लिपटी आर्द्रता में !*
*खो गया है बहुत कुछ*
*बहुत याद करता हूँ कि क्या?*
*लेकिन याद नहीं पड़ता !*
*चलो भूल जाता हूँ थोड़ी देर के लिए*
*कभी कभी याद आ जाता है भूला हुआ*
*अचानक भी !*

## लंबी बारिश में

*पानी बात करता रहा निर्द्वंद*
*मेरे उलझे हुए सपनों से*
*मेरे बारे में...*
*लगातार हुई लंबी बारिश में भीगते*
*दो आँसू हिल रहे थे मेरे अंदर !*
*मैं अपनी काँपती हुई स्मृतियों से*
*बाहर निकला हुआ था कब का*
*ढूँढ़ने छूटे हुए दर्द का विदा गीत !*
*सपनों से उतरे हुए कच्चे रंग*
*चू रहे थे मिट्टी की कच्ची भीत पर !*
*फूल बनने की कोशिश में*
*बुझी हुई अतृप्त प्यास का*
*गाढ़ा धुआँ मुस्कुरा रहा था लगातार !*
*थके हारे बादलों के माथे से टपकते*
*पसीने ने रच दिया*
*आकाश की नीली आँखों में*
*इंद्रधनुष...!*
*और अभी तक भी...*
*उठने की अदम्य लालसा में*
*प्रतीक्षारत मिट्टी की सौंधी महक*
*उचक उचक कर बाट जोह रही थी*
*पहली बारिश की !*

# छंद में अच्छी कविता लिखना बहुत कठिन : नरेश सक्सेना

**बाबा नागार्जुन ने एक बार मुझे कहा था- 'छंदमुक्त या मुक्तछंदीय अच्छी कविता भी वही लिख सकता है, जिसे छन्दोब' लिखने का अभ्यास हो : गंगेश गुंजन**

छंदयुक्त और मुक्तछंद कविताओं के बारे में उठे एक प्रश्न पर हमारे समय के महत्वपूर्ण कवि नरेश सक्सेना लिखते हैं- 'छंदमुक्त की शुरूआत निराला ने की थी। दुनिया की सारी भाषाओं में ये हुआ। जो आज भी छंद में अच्छा लिख सकते हैं, वे जरूर लिखें। मैं तो दोनों तरह से कोशिश करता हूँ। छंद में अच्छी कविताएं लिखना बहुत कठिन, लगभग असंभव। लय कविता का प्राण है, यह सही है।'

सुपरिचित कवि गंगेश गुंजन लिखते हैं- 'बाबा (नागार्जुन जी) ने एक बार मुझे कहा था-'छंदमुक्त या मुक्तछंदीय अच्छी कविता भी वही लिख सकता है, जिसे छन्दोबद्ध लिखने का अभ्यास हो। स्वाभाविक ही उसके बाद मैं, इसे ज़िम्मेदार गंभीरता से लेने लगा। वैसे कविता भी तो अपने स्वरूप के अनुरूप ही अपने रचनाकार से साँचा भी ग्रहण करवाती है। छन्दोबद्ध या मुक्त लिखना भी अक्सर आपकी इच्छा पर शायद ही निर्भर है। हमारे समय के श्रेष्ठ सिद्ध कवि नरेश जी अधिक स्पष्ट जानते हैं। शास्त्रीय गायन-वादन में राग-रागिनियों की 'अवतारणा' की जाती है। यह विलक्षण अवधारणा है। जैसे प्राणप्रतिष्ठा की धारणा-परम्परा। इसी भाव से मैंने 'रूह' की बात की है। रूह हर जगह नहीं ठहर पाती। कोई भी कला-विधा (कविता या गीत तो और भी) 'आलोचना' के सम्मुख याचक बनकर नहीं जीती-मरती है। अपना वजूद सिद्ध करने के लिए रचनाकार को स्वयं महाप्राण बने रहना पड़ता है। जहां तक अपनी बात है, तो मैं प्रासंगिकता के संग अनवरत वह भी लिखता रहा। रचनाओं के प्रकाशन की स्थिति जैसी अब है, वैसी ही तब भी उदासीनता की रही। लेकिन गीत विधा की मृत्यु मानना और कहना उन लोगों के अपने विश्वास का अकाल था, जो 'अकवि' थे क्योंकि यही उनकी प्रतिभा और प्रवृत्ति के लिए सुविधाजनक था। मुक्त कविता-कर्म से बुद्धि और कार्य साधक भावुकता का लक्ष्य तो पा लिया जा सकता है, 'रूह' का नहीं। रूह तो छन्द के आँगन में ही उन्मुक्तता से धड़कती है। और रूह को जो महज रूमानियत के दायरे में ही समझने, देखने-कहने के आदी हैं, वे इसपर भी अपनी बौद्धिक उदासीनता प्रकट करेंगे। अंततः रचनाकार की अपनी प्रवृत्ति और आस्था के साथ प्रयोगशील रहने का उसका साहस ही मुख्य है।'

कवि संजय चतुर्वेदी लिखते हैं- 'अनुवादवादी और आयातवादी सौंदर्यभ्रम का एक फलता फूलता कारोबार फैला है हिंदी पट्टी की छाती पर। ये और बात है कि न तो इस कारोबार का हिंदी पट्टी से कोई ह्लेणा-देणाह्व रहा - न इसके बाशिंदों से। लेकिन इस महादेश की जनता ने सदा कृतघ्नता और विस्मृति से इन्कार किया है।'

कवि ज्ञानचंद मर्मज्ञ लिखते हैं- 'इन्हीं आलोचकों ने एक समय छन्दिक कविता की मृत्यु की घोषणा भी की थी परन्तु समय के साथ कविता ने पुनःअपने

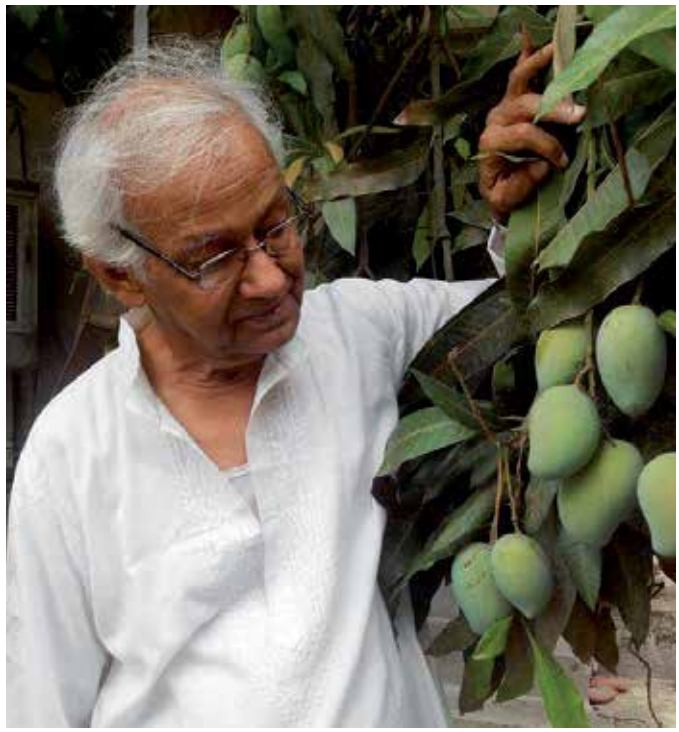

को नव गीत के रूप में स्थापित किया। गीत तत्व कविता का प्राण है। कविता से इसे कभी अलग नहीं किया जा सकता।'

कवि नवल जोशी लिखते हैं - 'छंदमुक्त कविता के नाम पर पिछले वर्षों जो योजनाबद्ध अभियान चलाये गये हैं, उनसे असल काव्य का नुकसान ही हुआ है; तथापि छंदीय काव्य का प्रभाव यथावत है। इस अर्से में यह भी प्रमाणित हुआ है कि कविता वही जीवित रहेगी, जो गेय है। इसीलिये आलोचकीय उपेक्षा के बावजूद छंदोबद्ध काव्य सृजन निरंतर चल रहा है।'

कवि सेवाराम त्रिपाठी लिखते हैं- 'छन्द में लिखना हमेशा कठिन होता है। इस शैली की रचनाएं समूची दुनिया में लिखी गईं। इसके लिये आलोचकों को दोषी ठहराने का भी एक रिवाज सा पड़ गया है। हां निराला के बाद बहुतायत से छन्द मुक्त रचनाएं लिखी जाती रही हैं। अब भी लिखी जा रही हैं। सच में पूर्व में मैंने भी गीत-नवगीत लिखे, फिर एकदम कम हो गया। मेरा मानना है कि जिनमें क्षमता हो, छन्द में लिखने की कुव्वत हो, उन्हें जरूर लिखना चाहिए। आखिर किसने मना किया है। समय की आपाधापियों की वजह से छन्द साधना न कर सकने की कमी की वजह से लोग मुक्तछन्द की तरफ मुखातिब हुए।'

जगदीश तिवारी लिखते हैं- 'क्या मात्र आलोचकों के मार्गदर्शन से ही साहित्य चलता है? नहीं, ये मान लेना साहित्य जगत के साथ अन्याय होगा। हाँ, हम इस बात के पक्षधर हैं कि छंदानुयायियों को अपनी अस्मिता की रक्षा के लिये खुद आगे आना पड़ेगा, और ऐसी चेतना आ भी रही है। हमे अपनी लेखन शैली को भी परिमार्जित करने की आवश्यकता है। दोहा आज एक सशक्त विधा के रूप मे स्थापित हो चुका है।' अरविंद तिवारी लिखते हैं कि यह सच है पर फिर भी कुछ कवियों की छंदबद्ध रचनाओं को मान्यता मिली है, जैसे शमशेर बहादुर सिंह की ग़ज़लें, केदारनाथ अग्रवाल के गीत। और, इधर, अष्टभुजा शुक्ल की छंद में लिखीं कविताएँ।

# भाषा के भंवर में आबरू-ए-शायरी

कोई ग़ज़ल को 'आबरू-ए-शायरी' कहता है, कोई मनहूस शैली की शायरी। 'गालिब' लिखते हैं - 'बकद्रे शौक नहीं जर्फे तंगना-ए-ग़ज़ल। कुछ और चाहिए वसुअत मेरे बयां के लिए।' फिलहाल, ग़ज़ल को गालिब की इस लाइन के नाम करते हैं- 'शमा हर रंग में जलती है सहर होने तक।' ग़ज़लों की बादशाहत जितनी पुरसकून रही है, उतने ही बहसों के, सवाल-जवाब के, नोक-झोंक भरे झमेले भी। कभी उम्दा तो कभी खराब ग़ज़ल, कभी उर्दू तो कभी हिंदी ग़ज़ल की बातें। वही बात कि, दीवार क्या गिरी मेरे कच्चे मकान की, लोगों ने मेरे जेहन में रस्ते बना लिए। आभासी दुनिया में पिछले दिनो कृष्ण सुकुमार की ग़ज़ल के बहाने कृष्णकांत अक्षर ने कई सवालिया (असहनीय भी) उलाहने दिए। उस पर गंभीर प्रतिक्रिया हुई। आइए, हम इस ताजा नोक-झोंक भरी बहस से रू-ब-रू होते हैं-

कृष्णकांत अक्षर ने लिखा - 'हिन्दी की शब्दावली विश्व की भाषाओं में सर्वाधिक है, पर हिन्दी वाले नब्बे प्रतिशत उर्दू शब्दों के प्रयोग में अपना गौरव समझते हैं। एक अतिभ्रामक, भयावह शब्द 'हिन्दी ग़ज़ल' चल गया है। क्या आपने 'उर्दू. सवैया', 'उर्दू कवित्त', 'उर्दू मंदाक्रान्ता' कहीं पढ़ा है। उर्दू वाले कहते हैं कि हिन्दी वाले हमारा छन्द चुरा लेते हैं। क्या हिन्दी व्यर्थ की शब्दहीन, अर्थहीन भाषा है, केवल उर्दू में ही काव्य-रचना हो सकती है। सोम ठाकुर ने कहा था- 'हिन्दी वाले उर्दू के पिछलग्गू हो गये। हिन्दी का क्या होगा।' नीरज ने 'हिन्दी ग़ज़ल' शब्द पर ही आपत्ति की थी। आप नहीं जानते, जानते भी होंगे कि ग़ज़ल काव्य की विधा नहीं, उर्दू का एक छन्द है, जिसमें हुस्न-इश्क के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। हिंन्दी की रोटी खाने वाले विश्वासघाती लोग उर्दू ग़ज़ल लिखकर हिन्दी

का गला घोट रहे हैं। इससे बडा.पाप क्या होगा।

'अदम गोडवी, चन्द्रसेन विराट आदि ने शुद्ध हिन्दी में गीतिका (ग़ज़ल) लिखी हैं, पढ़िये, आप उर्दू का असंगत पक्षपात कर रहे हैं। हिन्दी, उर्दू से सौगुनी समर्थ भाषा है। इसमें बिना उर्दू शब्द प्रयोग किये उर्दू से अधिक प्रभावशाली ग़ज़लें लिखी जा रही हैं। वस्तुतः आज भारतीयता का विरोध चतुर्दिक मुखर है, वही आप लोग कर रहे हैं। आप लोग जो हिन्दी को समाप्त करने का अभियान चला रहे हैं, उससे हिन्दी समाप्त नहीं होगी। आपका जन्म, पालन पोषण, शिक्षा-दीक्षा उर्दू वातावरण में हुई है। अत : जस सावन के अन्धहिं..., आपको केवल उर्दू ही एकमात्र महान भाषा लगती है। कोई भारतीयता और भारतीय संस्कृति से द्वेष रखनेवाला ही ऐसा सोच सकता है।

'बात अस्मिता की हो, स्वाभिमान की हो तो कम से कम मनस्वी व्यक्ति या लेखक, कवि अपमान कैसे सहन कर सकता है? मैं अंग्रेजी-उर्दू मुक्त हिन्दी का अभियान चला रहा हूँ। कारण है, उर्दू शायरों द्वारा हिन्दी वालों का पदे-पदे घोर अपमान। मुझे मंचों पर इनसे दो-चार होना पड़ता है। वे कहते हैं कि हिन्दी में लफ्ज नहीं, वे तो हमारे लफ्जों का इस्तेमाल करते हैं। हिन्दी बहुत गिरी हुई भाषा है। हिन्दी में माधुर्य या रस नहीं है। जबकि हिन्दी जितनी सरसता या माधुर्य विश्व की किसी भी भाषा में नहीं है, न इतना शब्द भण्डार विश्व की किसी भाषा में है, न इतना छन्द वैविध्य। यहाँ दो वर्ण का भी छन्द है। वस्तुतः हिन्दी वालों को उर्दू वाले भिगो-भिगो कर जूते मार रहे हैं परन्तु हिन्दी वाले इतने महा निर्लज्ज हैं कि उनके तलवे चाट रहे हैं।'

# एक भाषा की तुलना दूसरी से क्यों? : कृष्ण सुकुमार

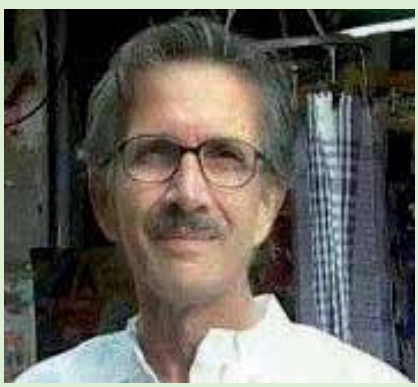

'पहली बात तो यह कि वह कभी भी, कहीं भी 'हिंदी /उर्दू ग़ज़ल' पदावली का प्रयोग अपनी ग़ज़लों के साथ नहीं करते। ग़ज़ल काव्य की एक विधा है और हर भाषा में मात्र 'ग़ज़ल' ही है। दूसरी बात, ग़ज़ल फारसी से उर्दू और फिर हिंदी में आयी है। इसलिए ग़ज़ल की बनावट ऐसी है कि इसे शत-प्रतिशत संस्कृतनिष्ठ हिंदी में कहने से इसका मिजाज ही बदल जाता है। उर्दू शब्दों की बनावट और उच्चारण में जो एक प्रकार की कमनीयता, लचीलापन और कोमलता है, वो ग़ज़ल में प्रयुक्त तत्संबंधी शब्दों की अर्थ छवियों और ध्वनियों को बहुत तरलता से प्रकट कर सकने में समर्थ है। ऐसा नहीं कि हिंदी असमर्थ भाषा है किंतु उर्दू शब्दों के स्थान पर हिन्दी शब्दों का प्रयोग ग़ज़ल में तो वैसा प्रभाव पैदा नहीं कर सकता। हिंदी में लिखी जा रही तथाकथित ग़ज़लें बेशक ग़ज़ल के फार्मेट में होती हैं लेकिन प्रभाव में सपाट कविता महसूस होती हैं।

'वस्तुतः ग़ज़ल विधा में पूर्णतः हिंदी शब्दों पर बल देने वाले ग़ज़ल की प्रकृति की तह तक नहीं पहुँच पाते। एक और बात, आम बोलचाल तक में उर्दू शब्दों की भरमार है। यहाँ तक कि जिन उर्दू शब्दों से परहेज बरतना चाह रहे हैं, अधिकांशतः वे सब हिंदी शब्दकोषों का हिस्सा बन चुके हैं। ऐसे में यदि उसी आम बोलचाल की भाषा में ग़ज़ल कही और समझी जा रही है तो हिंदी शब्दों को ठूंस कर प्रभावहीन ग़ज़ल कहने का दुराग्रह क्यों? आप कृपया आहत न हों। मैं न तो हिंदी का विरोधी हूँ, न ही भारतीयता या भारतीय संस्कृति का। बात सिर्फ ग़ज़ल को लेकर थी और कृपया उस तक ही बनाये रखें।

'काजू भुने पलेट में, विस्की गिलास में। उतरा है रामराज विधायक निवास में। पक्के समाजवादी हैं, तस्कर हों या डकैत, इतना असर है खादी के उजले लिबास में। आजादी का वो जश्न मनायें तो किस तरह, जो आ गए फुटपाथ पर घर की तलाश में। पैसे से आप चाहें तो सरकार गिरा दें, संसद बदल गयी है यहाँ की नखास में। जनता के पास एक ही चारा है बगावत, यह बात कह रहा हूँ मैं होशो-हवास में।' अदम गोंडवी की इस ग़ज़ल में उर्दू के आठ-नौ शब्द हैं (असर, लिबास,आजादी, जश्न, तरह, तलाश, नखास, बगावत, होशो-हवास) और आप अपने वक्तव्य में इनकी ग़ज़लों को शुद्ध हिंदी की ग़ज़ल कह रहे हैं!

आप एक भाषा की तुलना दूसरी भाषा से कर क्यों रहे हैं? प्रत्येक भाषा स्वयं में पूर्ण समर्थ होती है। यह तो उस भाषा पर अधिकार रखने से संबंध रखता है। ग़ज़ल विधा का प्रयोग करने या उर्दू शब्दों का ग़ज़ल में प्रयोग करने मात्र से भारतीयता का विरोध किस प्रकार हो जाता है? अदम जी की ग़ज़लें पढ़ें। उनकी ग़ज़लों में आवश्यकतानुसार उर्दू शब्दों का बहुतायत प्रयोग मिल जायेगा।

'ग़ज़ल उर्दू का छंद नहीं काव्य विधा है। और यह तो पहले ही मैं उल्लेख कर चुका हूँ कि यह हिंदी की नहीं फारसी/उर्दू की विधा है। दूसरी बात, आज के दौर का कोई भी हिंदी-उर्दू रचनाकार सिर्फ हुस्न या इश्क की बात ग़ज़ल में नहीं कर रहा है। पहले आप आज के दौर की ग़ज़लें पढ़ें। तीसरी बात, हिंदी की रोटी किस तरह मेरे जैसे खा रहे हैं, जरा स्पष्ट करें। ग़ज़ल या हिंदी कविता से मेरी आजीविका तो नहीं चल रही है।

'पहले मेरे वक्तव्य को ध्यान से पढ़ें। आपने बिल्कुल भी ध्यान दे कर नहीं पढ़ा है। मैंने नहीं कहा कि हिंदी व्यर्थ की शब्दहीन अर्थहीन भाषा है, न मैंने 'हिंदी ग़ज़ल' शब्द का कभी प्रयोग या समर्थन किया है। कोई किसी भाषा का पिछलग्गू नहीं हुआ करता। पहले आप यह तय करें कि आप हिंदी वाला या उर्दू वाला किसे कहते या मानते हैं? तब आगे की बात की जाएगी।'

# बिना विचारे कृष्ण सुकुमार पर निर्मम प्रहार : भीमसेन सैनी

डॉ. कृष्णकान्त अक्षर ने सुकुमार पर बिना विचारे निर्मम प्रहार कर दिया। उनकी 'वॉल' पर जाकर उनकी कविताओं को भी ध्यान से पढ़ें। कविताएँ मुक्त छंद में हैं और बहुत सुंदर बिम्बों से सजी हैं। आप 'डॉक्टर' हो लेकिन आपका व्यवहार पद के अपेक्षित नहीं। मैं एक मैकेनिकल इंजीनयर हूँ और सारी उम्र फैक्ट्रियों में जाकर इंडस्ट्रियल इंजनों को ओवरहाल और रिपेयर किया है लेकिन बहुत पहले 1991 में एक हिंदी के विद्यार्थी को शोध लिख कर दिया था और बिना किसी त्रुटि के उसे पी.एच.डी. की डिग्री भी मिल गई थी। उसे डिग्री चाहिए थी और मुझे ज्ञान। तब मेरी आयु मात्र 23 वर्ष रही होगी। मैं पूरे दिन फैक्ट्रियों में काम करता और रात में उसका शोध लिखता था। मैं उस कथित डॉक्टर का नाम देकर उसके समस्त जीवन का अर्चन व्यर्थ नहीं करना चाहता लेकिन अगर आपको यह लग रहा है कि मैं झूठ बोल रहा हूँ तो मेरी वॉल में जाकर मेरे कुछ आलेख पढ़कर आप मेरा मूल्यांकन कर सकते हैं। यह बात मुझे इसलिए कहनी पड़ी ताकि आप मुझे ध्यान से सुनें। प्रायः मैंने देखा है जिन विद्वानों के सामने डॉक्टर लगा रहता है, बाकी को मूर्ख समझते हैं।

यहाँ मैं 'विधा' के भेद में नहीं पड़ना चाहता। यह बात सत्य है कि 'गंगा-जमनी तहजीब' के नाम पर हिंदी पर बड़ा सफल आक्रमण हो रहा है। इसके पीछे हिंदी कविताओं में गेयता की कमी रही है और ग़ज़ल या नज्म को यह सफलता, जिन्हें साधारण जन-मानस 'गाने' कहता है, फिल्मों ने दिलाई है। गैर हिंदीभाषी क्षेत्रों, हिंदी के विस्तार के पीछे केवल हिंदी फिल्मों का योगदान है, जिसमें हमारे हिंदी संस्थानों का नाम-मात्र ही सहयोग है। अतः आज हिंदी को जो स्वरूप मिला हुआ है, वह फिल्मी हिंदी वाला है क्योंकि उसका स्रोत पाठ्यक्रम नहीं थे। मेरा विचार है, छायावादी कवियों के बाद खड़ीबोली की कविताओं का पतन होना शुरू हो गया था। पहला हमला तो स्वयं निराला जी ने मुक्त-छंद के रूप में ही कर दिया था।

मैं, स्वयं अपने लेखन में फारसी या अरबी के शब्दों के प्रयोग से बचता हूँ पर कुछ शब्दों का प्रयोग अवश्यम्भावी हो जाता है। उदाहरण के लिए मैं 'बाद' के स्थान पर 'पश्चात' का प्रयोग करता था। एक हिंदी के 'डॉक्टर' विद्वान ने ही मुझे उसके प्रयोग से मना कर दिया। आज शुद्ध हिंदी में लिखे उपन्यास प्रकाशक भी छापने को तैयार नहीं हैं। मैंने अपनी कुछ कहानियाँ एक प्रकाशक को दिखाईं, उसने यह कहकर मनाकर दिया कि इनमें तत्सम शब्दों की भरमार है। आप पूरी बहस को व्यवहारिक दृष्टि से भी देखें।

चपरासी वांट्स बख्शीस। ईडन-गार्डन ब्यूटीफुल गार्डन है। यह दो वाक्य हैं, जिनमें एक अंग्रेजी और दूसरा हिन्दी का है। 'क्रिया' जिस भाषा की हो, 'वाक्य' उसी का हो जाता है। और अगर हम हिंदी के तत्सम शब्दों से सजी भाषा को हिंदी मानें तो 'कबीरदास' को हिदीं से बाहर करना पड़ेगा। बहस व्यर्थ है और इसका कुछ परिणाम भी नहीं निकलेगा। आप सब विद्वानों से निवेदन है कि अगर ग़ज़ल लिखें तो उसे तत्सम शब्दों से बचाएँ और यदि कविता लिख रहे हों तो उसे फारसी और अरबी शब्दों से बचाएँ।

मैंने कृष्ण सुकुमार की कविताएँ पढ़ी हैं और उनको कदाचित हिंदी के सुन्दर शब्दों से सजा पाया है। मैं उनकी ग़ज़लें नहीं पढ़ता और प्रायः किसी की भी नहीं। मुझे उनसे घृणा नहीं है, बस अपना सारा ध्यान हिन्दी पर रखना चाहता हूँ। हाँ, पुराने गाने अवश्य सुनता हूँ क्योंकि उनकी रचना में एक साथ कई सरस्वती-पुत्रों का परिश्रम अंतर्निहित होता है। वैसे मैं बहस में नहीं पड़ना चाहता क्योंकि मैंने कई बार देखा है कि कुछ समय पश्चात वे तथ्यों से भटककर अहम के क्षेत्र में पदार्पण कर लेती हैं। एक कवयित्री ने हिंदी विभाग का एक बड़ा पद कब्जा रखा है। उनकी अस्त-व्यस्त कविताओं को पढ़कर मुझे विचित्र लगता था कि इसे कैसे साधरण-सी कविताओं पर दो सौ, तीन सौ अधिक

'लाइक' मिल जाते हैं। उन कविताओं में न कोई छंद था और न ही मात्राओं का सम्मान। स्पष्ट था, उन्हें हिंदी और और उर्दू के शब्दकोश पास रखकर रचा जाता था। मानसिक पीड़ित होकर, एक दिन मैंने उसे स्पष्ट शब्दों में लिखा कि 'मैडम' आप चाटुकारों से घिरी हुई हैं, मैंने आज तक आपकी कोई रचना प्रतिक्रिया देने योग्य नहीं समझी, मेरी सलाह है, आप कुछ दिन महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत को पढ़ें, निश्चित रूप से उन्हें किसी ने इस तरह नहीं झकझोरा होगा। उस दिन वह सारे दिन गुस्से में प्रतिक्रिया भेजती रहीं लेकिन मैंने पाया कि उनके दो सौ से अधिक समर्थकों में से एक भी उनके समर्थन में नहीं आया।

जो लोग हिंदी को दोयम या अपूर्ण समझते हैं, वे परिश्रम से बचते हैं और चोरी का आरोप तो कोई मूर्ख ही लगा सकता है। उन्हें छायावादी कवियों को पढ़ने की सलाह दें। समस्या यह है कि आज लेखक बिना अध्ययन किए लिख रहे हैं तो उन्हें नए शब्द कहाँ से मिलेंगे। फिर चाहे भाषा हिंदी हो या उर्दू, वे अपने परिवेश से ही शब्द जुटाते हैं और भाषा को प्रदूषित करते हैं। मैं हिंदी में अंग्रेजी या उर्दू के शब्दों के प्रयोग से बचता हूँ और हिंदी का घोर समर्थक हूँ।

# झगड़ें नहीं, जरा इस हकीकत से रू-ब-रू हों : सुलभ अग्निहोत्री

मित्रों, झगड़ने के स्थान पर कुछ तथ्य देखें। स्वयं 'हिन्दी' शब्द किस भाषा का है ? अगर अक्षर जी का अनुसरण करेंगे तो सबसे पहले अपनी भाषा के लिए कोई नया शब्द खोजना पड़ेगा। प्राइमरी में हम पढ़ते हैं कि हिन्दी में चार प्रकार के शब्द हैं - तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी। तो साहब जितने भी विदेशी भाषाओं के शब्द हिन्दी ने आत्मसात कर लिए हैं, वे सब आज हिन्दी के हैं। अरबी-फारसी के जो शब्द हिन्दी ने कुछ परिवर्तन के साथ स्वीकार किए हैं, वे उसी परिवर्तित रूप में हिन्दी के हैं, उनके शुद्ध रूप हिन्दी में अशुद्ध ही माने जायेंगे। उदाहरणार्थ शहर, वजन, बहर आदि। दुनिया शब्द को हिन्दी ने दुनियाँ के रूप में स्वीकार किया है तो वही सही है। हाँ, यहाँ पर दुनिया को भी स्वीकार करना होगा क्योंकि तमाम लोग इसे 'दुनिया' ही लिखते हैं। वे ब्राह्मण को बिरहमन ही कहते हैं, वे ऋतु को रुत की कहते हैं तो देवनागरी में लिखते समय हमने भी जो शब्द, जिस रूप में स्वीकार कर लिया है, उसे उसी रूप में प्रयोग करना उचित है।

प्रत्येक भाषा बड़ी संख्या में अन्य भाषाओं के शब्द अपनाती रहती है। यह एक निरंतर प्रक्रिया है। इसे बाधित नहीं किया जा सकता है। भाषा बोलने वालों से बनती है, न कि भाषा से बोलने वाले। भाषा का शब्द-भंडार और उसका व्याकरण भी उसके बोलने वालों के बदलते अभ्यास के अनुसार परिवर्तनशील होता है और उसे ऐसा होना ही पड़ेगा अन्यथा भाषा मर जाएगी। अब आइये ग़ज़ल की बात करते हैं।

ग़ज़ल और हिन्दी ग़ज़ल, को दो अलग-अलग विधा मानना ही पड़ेगा अन्यथा जब तक आप उर्दू व्याकरण पर पूरी तरह अधिकार नहीं रखते, तब तक आपका हर शेर बहर से खारिज होता रहेगा। बोलने में दोनों भाषाएं एक लगती हैं किंतु लिखित रूप में दोनों के मिजाज में बहुत फर्क है। ज्यादा नहीं, एक उदाहरण देता हूँ झ 'शुरू' शब्द को आप कितनी मात्रा का मानते हैं? जनाब ये चार हरूफी शब्द है। इसे शुरूअ लिखा जाना चाहिए। ऐसे हजारों लाखों शब्द हैं, जिनकी वर्तनी हिन्दी में हमने बदल दी है। आम मुसलमान भी सही वर्तनी नहीं जानता किंतु जब आप अदबी क्षेत्र में घुसते हैं तो इस पर टीका-टिप्पणी होती है।

ग़ज़ल को हिन्दी-उर्दू में न बाँधने की बात करने वालों की सदाशयता अल्पज्ञान की ही उपज है। मैंने पहले ही कहा कि दोनों भाषाओं के लिखित मिजाज में बहुत बड़ा फर्क है। अगर आप सिर्फ ग़ज़ल कहेंगे तो आपका हर शेर बहर से खारिज होगा या फिर वह हिन्दी वालों की समझ में ही नहीं आएगा। उर्दू वाले हिन्दी के बड़े-बड़े शायरों की ग़ज़लों पर भी नाक-भौंह सिकोड़ते देखे जा सकते हैं। नीरज ने अगर हिन्दी ग़ज़ल को गीतिका नाम दिया तो इसी से आजिज आकर। उर्दू के उस्ताद उनकी भी हर ग़ज़ल बहर से खारिज कर देते थे। मंचों पर विषम स्थिति हो जाती थी।

जनाब ग़ज़ल का हर आदमी आदरणीय 'एहतराम इस्लाम' नहीं है।

एक छोटा शब्द है, मात्रा पतन (जहाँ बहर/लय के अनुरूप पढ़ने के लिए दीर्घ मात्रा को लघु करके पढ़ा जाता है) उर्दू में इसके लिये बड़े लम्बे नियम हैं। कारण भी हैं, उनके यहाँ मात्राएं हैं ही नहीं तो उन्हें तमाम कायदे बनाकर उसे स्पष्ट करना पड़ता है जबकि हिन्दी में मात्राएं हैं। आप सिर्फ इतने से ही काम चला सकते हैं कि बहर के अनुसार पढ़ने के लिए दीर्घ मात्रा को लघु करके पढ़ा जा सकता है, हालांकि लिखा उसे शुद्ध रूप में ही जाएगा। अर्थात लिखते समय मात्रा छोटी नहीं लगायी जाएगी। एक सबसे जरूरी बात। जब आप हिन्दी में लिख रहे हैं तो शब्द भले ही अरबी-फारसी के ले लीजिए किंतु व्याकरण हिन्दी का ही रखना पड़ेगा। इजहार-ए-मुहब्बत या शरीक-ए-हयात से बचाना होगा। उर्दू शब्द भी उसी रूप में प्रयोग कीजिए, जिस रूप में उन्हें हिन्दी ने अपना लिया है।

हिन्दी गद्य का लिखित रूप तो उर्दू के बाद का है। (देखिये आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी

साहित्य का इतिहास)। इसी तरह ग़ज़ल भी सिर्फ ग़ज़ल नहीं रह सकती। यदि उसे सिर्फ ग़ज़ल ही रखना हो तो पहले उसका मूल अरबी/फारसी व्याकरण पढ़ना और समझना होगा, साथ ही उर्दू पर भी पूरा अधिकार प्राप्त करना होगा। दुष्यंत हमारे लिए बहुत बड़ा नाम है, गोपालदास नीरज हमारे लिए बहुत बड़ा नाम है किंतु (उर्दू) ग़ज़ल के उस्ताद दोनों को लगभग खारिज ही कर देते हैं। नीरज जी तो इससे स्वयं इतने पस्त हो गये कि उन्होंने अपनी ग़ज़ल को गीतिका कहना शुरू कर दिया। मैं बहुत आहत हुआ, जब टिप्पणी आई कि 'हिन्दी आखिर है क्या, देवनागरी में लिखी हुई उर्दू ही तो है।'

हमारे सदाशयी ग़ज़लगो उनकी इस टिप्पणी को सही ही तो साबित कर रहे हैं। यदि आप कहते हैं कि तत्सम शब्दावली में ग़ज़ल नहीं कही जा सकती तो डॉ. शिवओम अम्बर को पढ़िये। मैं हिन्दी में उर्दू ही नहीं किसी भी दूसरी भाषा के शब्द, जो हिन्दी बोलने वाले समझते हैं, के प्रयोग का हिमायती हूँ किंतु इसके साथ यह भी जरूरी है कि हिन्दी का अपना स्वरूप भी बना रहे, उस पर कोई आँच न आये। विदेशी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग के साथ उसमें तत्सम शब्द भी बहते हुए आयें। भाषा का परिष्कार और श्रृंगार भी शब्दकर्मियों का ही दायित्व है।

# हिंदी-उर्दू दोनों का क्रिया-पद एक तो उनमें भेद कैसा : एसडी ओझा

'दिल लगी' उर्दू का शब्द है, जिसका मतलब दिल लगाना होता है। यही शब्द हिंदी में जब 'दिल्लगी' हो जाता है तो उसे मजाक के सेंस में लिया जाता है परन्तु हिंदी-उर्दू में भेद कैसे कर सकेंगे, जबकि दोनों का क्रियापद तो एक ही है। जब अरबी-फारसी के शब्द बीच में लिखेंगे तो वह उर्दू हो जाएगी। जब आप संस्कृतनिष्ठ हिंदी लिखेंगे तो वह हिंदी कहलाएगी। फिर क्रियापद का क्या करेंगे, वाक्यों के अंत में तो जाता है/ जाती है, ही लिखना पड़ेगा। क्या कोई भाषा अरबी, फारसी या संस्कृत के शब्दों के बाहुल्य के आधार पर उर्दू या हिंदी कहलाएगी?

जब उर्दू का जन्म हुआ था तो उसमें आम बोलचाल की भाषा होती थी, जिसे सभी समझते थे। जब भाषा अरबी, फारसी और संस्कृतनिष्ठ भाषा के बोझ तले दुरूह होने लगी तो उसे हमने उर्दू / हिंदी का नाम दे दिया। आम बोलचाल की जुबान सभी समझते हैं। क्यों न हम आम बोल चाल की भाषा को उर्दू/हिंदी के बजाय हिंदुस्तानी कहें। वैसे भी उर्दू किसी भाषा का नाम नहीं है। फारसी या अरबी में टेंट को उर्दू कहा जाता है।

मैं मानता हूं कि ग़ज़ल का सफर फारसी से होता हुआ उर्दू में आया। उर्दू से हिंदी ने अपनाया। जहां तक उर्दू शब्दों के प्रयोग का प्रश्न है तो ऐसा हिंदी व उर्दू में ही होता है, क्योंकि दोनों हमलतीफ भाषाएं हैं। इसलिए कोई चाहकर भी शुद्ध हिंदी या शुद्ध उर्दू नहीं लिख सकता, क्योंकि उर्दू व हिंदी के तमाम शब्द लगभग एक जैसे ही हैं। उदाहरण के लिए, मैंने भोजन कर लिया या मैंने खाना खा लिया, दोनों का मतलब दोनों भाषाओं के जानकार समझते हैं और लिखते हैं लेकिन यही बात जब बांग्ला में होगी तो केवल और केवल बांग्ला ही लिखना होगा। उर्दू के शब्द यहां बेमायने हो जाएंगे।

# हिंदी को सराहें मगर उर्दू को पराया भी न मानें: ब्रिजेंद्र हर्ष

मैं किसी पक्ष या विपक्ष में विश्वास नहीं रखता। हर भाषा अपने आप में समर्थ है। मैं हिन्दी का पक्षधर हूँ लेकिन किसी कट्टरता का पक्षधर नहीं। मैंने अक्सर देखा है कि हिन्दी की हिमायत करके कुछ लोग स्वयं को सच्चा हिन्दी हितैषी साबित करने की कोशिश करते हैं लेकिन उनके बच्चे इन्डलिश मीडियम स्कूलों में पढ़ते हैं। मैं किसी की अवहेलना नहीं कर रहा हूँ। बस यह कहना चाहता हूँ कि किसी भी चीज की हिमायत करें तो पूरी करें वरना न करें। रही छन्द की बात तो मैं बताना चाहता हूँ कि छन्दमुक्त कविताओं छोड़कर, दुनियाँ की हर भाषा की कविता छन्द पर आधारित है। छन्द आया कहाँ से? छन्द आया हमारे पिंगल से। सारी दुनिया ने उसे अपनाया। यह हमारे लिये कम गर्व की बात है क्या। इसके अलावा उर्दू भी तो अब भारतीय भाषाओं में से एक है। हम हिन्दी को उच्च आदर्श दें, ये हम सबका दायित्व है लेकिन किसी अन्य भाषा की अवहेलना की शर्त पर नहीं। हिन्दी को अपनी आदर्श भाषा मानने का दम भरने वाले तो बहुत हैं लेकिन उसके लिए कुछ करने इच्छाशक्ति कोई नहीं दिखाता है। बरेली से एक हिन्दी ग़ज़ल की मोटी-सी पुस्तक प्रकाशित होती है। नाम है- नई लेखनी। उस पुस्तक में हिन्दी की ही ग़ज़लें छपती हैं। उर्दू का एक भी शब्द उसमें स्वीकार नहीं है। अब आप देखिए, उस पुस्तक के सम्पादक का नाम खयाल खन्ना है। एक तो खयाल खन्ना लोगों की ग़ज़लों से उन शब्दों के विषय में बताते हुए थक जाते हैं कि भैया आपकी ग़ज़ल में अमुक-अमुक शब्द उर्दू के हैं, दूसरे कई लोग उनसे ये प्रश्न पूछते रहे हैं कि आपका नाम उर्दू में है और आप ग़ज़लें हिन्दी में छापने की बात करते हैं तो उनका जवाब क्या होता है, ये मैं नहीं जानता। अक्षर जी ने अदम गोंडवी और सोम ठाकुर की हिन्दी ग़ज़ल की बात की है। उन्होंने उन दोनों विद्वानों की उन ग़ज़लों का जिक्र नहीं किया, जो उन्होंने उर्दू शब्दों के साथ लिखी हैं। नीरज और कुँवर बेचैन ने भी ऐसी ग़ज़लें लिखी हैं। हाँ, एक बात बीच में भूल गया कि बरेली वाली उस पुस्तक में उर्दू के अनेक मशहूर मुस्लिम शायर भी अपनी हिन्दी की ग़ज़लें भेजते हैं, जो सर्वाधिक पसंद की जाती हैं। उन्हें इस बात से कोई एतराज नहीं कि हिन्दी की ही ग़ज़ल क्यों छापते हैं? मैं सिर्फ एक बात जानता हूँ कि अपने घर की सुरक्षा करो लेकिन दूसरे का घर जला कर या उसकी उपेक्षा करके नहीं। एक शेर दे रहा हूँ - 'दुश्मनी अपनों से हो या गैर से, जब हुई देकर नहीं लेकर गई।' किसी विषय को इतना न खींचा जाए कि वह अदावत का रूप ले ले।

# ग़ज़ल विदेशी है परंतु हाइकू जैसी नहीं : श्रीराम त्रिपाठी

पहली बात, भाषा की। हिन्दी-उर्दू, एक ही भाषा है। हाँ, दो लिपियों में लिखे जाने के कारण दो भाषाएँ मान ली गईं। हिन्दी संस्कृति है, न कि संस्कृत। भाषा की संस्कृति जीवन संस्कृति होती है। एक जीवन, एक भाषा। ग़ज़ल विदेशी विधा है, परंतु हाइकू जैसी नहीं। यह आयातित न होकर आये हुए लोगों द्वारा यहाँ की संस्कृति में रच-बसकर बनी है। सो, ग़ज़ल, अब हिन्दुस्तानी विधा बन गयी है। यहाँ के हिन्दू-मुसलमान, दोनों ने इसे समृद्ध किया है। सो, आप निश्चिंत होकर लिखें। दूसरी बात, जीवन की भाषा में लिखें। भाषा व्याकरण से बनती है। यहाँ तो अंग्रेजी के बहुत से शब्द हिन्दी हो गये हैं। हिन्दी के व्याकरण ने उन्हें अपना बना लिया है। इतना ही नहीं, हिन्दी ने तो फारसी के व्याकरण को भी अपनाकर ही तो एक ऐसी भाषा बनाई, जो न संस्कृत है, न फारसी। वही हिन्दी। उदाहरण के लिए स्वयं प्रकाश की एक कहानी का शीर्षक है, नीलकांत का सफर। सफर शब्द न तत्सम है, न तद्भव और न देशज। यह फारसी भी है और अंग्रेजी। यहाँ दोनों अर्थ व्यंजित है। सर्जक अथवा लोक इसी तरह भाषा और जीवन को बरतता है।

# ग़ज़लगो के खयाल मायने रखते हैं, भाषा नहीं

बहस में हस्तक्षेप करते हुए दीक्षित दानकौरी ने लिखा - 'ये जो वातानुकूलित कमरों में बैठ कर सेना को आर्डर देते पैलेट गन मत चलाओ। प्लास्टिक की खोखली गोली चलाओ, किसी की जान मत लो। भले कोई तुम्हारी जान ले ले। इन ...को सेना के साथ भेजो। ये जब गोली खायेंगे तो पता चलेगा : इसमें 'जान' शब्द किस भाषा का है? 'आर्डर' शब्द किस भाषा का है? इनकी वॉल पर इनका नाम हिंदी में नहीं बल्कि रोमन में लिखा है, क्यों? क्या देवनागरी लिपि इतनी गरीब है?' सुरेश सपन लिखते हैं - किसी भी रचनाकार की अपनी शैली, शब्द और विचार होते हैं। उनको रचना में पिरोने के लिए वह उस भाषा को चुनता है, जो आसानी से सबकी समझ में आ जाये। आज तक अक्षर जैसे विचार आने का मतलब है कि उनकी ग़ज़लें स्वीकार्य हैं। बेहतर है, अपने महत्वहीन विचारों से उपकृत मत करें। पुनः अगर आपने शुद्ध हिन्दी में कोई ग़ज़ल कही हो तो पोस्ट करें, तब देखेंगे कि कथनी और करनी में कितना अंतर है।

अनवर इसलाम ने लिखा कि कृष्णकान्त के खुद के कथन में कितना विरोधाभाष नजर आ रहा है। वे अपने आप में ही स्पष्ट नहीं हो पा रहे हैं। ऐसे में सुकुमार क्यों उनकी बातों पर सफाई दे रहे हैं। वह उर्दू- हिंदी के झगड़े में पड़े बगैर बेहतरीन हिन्दुस्तानी (बोलचाल की मधुर भाषा) में ग़ज़ल कहते चले आ रहे हैं, जो हमे आपस में जोड़कर समरसता को बनाये रखने का काम करती है और कवि की कामयाबी भी इसी में होती है। सुरेंद्र कुमार सैनी लिखते हैं- कवि या शायर किसी भाषा की संकीर्णता में नहीं पड़ता। जियादा से जियादा भाषाओं का ज्ञान आदमी को होना चाहिए और हिंदी ग़ज़ल, उर्दू ग़ज़ल मुझे तो इन शब्दों से ही चिढ़ है। ग़ज़ल एक विधा है, बस। ये बेकार की बहस है। हमें अपनी रचनाधर्मिता जारी रखनी चाहिए और ऐसे विवादों को नजरंदाज करना चाहिए।

मोहम्मद हसीन का कहना है कि साहित्यकार की सोच बहुत व्यापक होती है। साहित्य के सन्दर्भ में भाषा का उतना महत्व नहीं होता, जितना साहित्यकार की विचार धर्मिता का। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम होती है, सोच नहीं। इसी प्रकार ग़ज़ल भी साहित्य की एक विधा है। बेशक ग़ज़ल का अर्थ आशिक-माशूक की बातचीत ही है लेकिन ऐसी कोई चीज नहीं, जो कहीं एक स्थान पर ठहरी हो। ग़ज़ल ने भी समय के साथ प्रगति की है। दूसरी बात यह कि उर्दू भी हिंदी की तरह भारत में ही जन्मी भाषा है। केशव शर्मा पूछते हैं, अक्सर क्या हिन्दी का शब्द है? ऐसे बहुत-से शब्द हैं जो आम हिन्दीभाषी की जुबान और दिनचर्या में शामिल हैं। यह शामिल शब्द भी। हां, हिन्दी ग़ज़लकार को अपनी ग़ज़ल में दर्दे-दिल जैसे शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए, उसे दिल का दर्द ही कहना चाहिए क्योंकि दर्दे-दिल हिन्दी व्याकरण में नहीं है। ग़ज़ल शब्दावली से ज्यादा कथन भंगिमा पर निर्भर है।

डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण' लिखते हैं - कृष्ण सुकुमार इस प्रकार की व्यर्थ बहस में क्यों पड़ गए। कोई भी विधा किसी की बपौती नहीं होती। जो उर्दू वाले इस बात से चिढ़ते हैं कि 'हिंदी ग़ज़ल'

दीक्षित दानकौरी

सुरेश सपन

मोहम्मद हसीन

डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा अरुण

पृथ्वीनाथ पांडेय

क्यों कहते हैं, उन्हें कहने दो। कविता का नियम है कि पहले रचना बनती है, बाद में उसके 'लक्षण' गढ़े जाते हैं। ग़ज़ल उर्दू में केवल इश्क, माशूक, मयखाना और जाम तक सीमित थी और दरबारों में दिल बहलाने का जरिया थी। अब न दरबार हैं, न इश्क करने वाले, तो ग़ज़ल भी बदलेगी ही। उर्दू वालों को कहिए कि अंग्रेजी के कई छंद जैसे 'सॉनेट' हिंदी में लिखे हैं, तो 'हिंदी सॉनेट' ही कहा जाएगा न? रही बात यह कि किस भाषा के शब्द प्रयोग हों, तो उसे 'हिंदी' या 'उर्दू' कहा जाए? हमने भाषा को कभी सीमित दायरों में नहीं बाँधा। क्या उर्दू में पूजा, मन्त्र, दूध, दही नहीं बोला जाता? तो हिंदी में भी कुर्ता, पायजामा, लुंगी और जाने कितने शब्द हम उर्दू के बोलते हैं। ग़ज़ल आज हिंदी में भी सशक्त विधा है, जिसके नियम भी बदले हैं। किसी की थोथी आलोचना से क्यों विचलित हों हम?

रविमोहन अवस्थी लिखते हैं - एक बात कहना अपना हक समझता हूं। ऐसा नहीं है कि हिन्दी में ग़ज़लें नहीं लिखी गयीं हैं और उनमें मिठास नहीं है। ये मैं एक झगड़े की बहस मानता हूं। स्वयं मैंने हिन्दी शब्दों का ठेठ प्रयोग कर ग़ज़लें लिखी हैं। पृथ्वीनाथ पांडेय का कहना है कि साहित्य की दो विधाएँ हैं- पद्य और गद्य। ग़ज़ल पद्य का एक विषय है, विधा नहीं। हमें गलत पढ़ाया गया था। कोई भाषा अथवा उसकी संरचनात्मकता किसी की 'अपनी' नहीं होती; मात्र उसकी प्रस्तुति 'अपनी' होती है। शब्द तो ब्रह्माण्ड में बिखरे हुए हैं, जिसकी-जितनी सामर्थ्य रहती है, ग्रहण कर लेता है। जब कोई सर्जक अरबी-फारसी, हिन्दी अथवा किसी भी भाषा के शब्द पर अपने समूह-विशेष अथवा स्वयं का अधिकार मानता है अथवा मनवाने के लिए दुराग्रह करता है, तब उसकी संकीर्ण मनोदशा बहुविध रेखांकित होती है। यह नितान्त उथली मानसिकता का द्योतक है। हर किसी को अपनी रचनाशीलता के अन्तर्गत स्वविवेक से भाषा और शब्द-निर्धारण की पूर्ण स्वतन्त्रता है। नीरज, सोम ठाकुर अथवा कोई भी किसी रचना अथवा रचनाकार की सर्जनात्मकता के समक्ष अवरोधक रेखा खींचने का अधिकारी नहीं है।

# जिनके लफ्जों का जादू आज भी सबके सिर चढ़कर बोले

ग़ज़ल-विश्व ने अनेकशः ऐसे नाम दिए हैं, जिन्हें पढ़ते-सुनते-गुनगुनाते हुए मन-प्राण खिल उठते हैं। वह अमीर खुसरो, वली मुहम्मद वली हों या दर्द, मीर, जौक, गालिब, जफर, इक बाल, चकबस्त, हसरत मोहानी, अकबर इलाहाबादी, मोमिन, आगाहश्र काश्मीरी, आतिश, सौदा, राम प्रसाद बिस्मिल, हफीज़ जालंधरी, जोश मलीहाबादी, जिगर मुरादाबादी, फिराक गोरखपुरी, फैज़ अहमद फैज़, कैफी.आजमी, हरीचंद अख्तर, जोश मलसियानी, मेलाराम वफा अथवा शकील बदायूँनी, साहिर लुधियानवी। उनके शब्दों का जादू आज भी सिर चढ़कर बोलता है।

इसी तरह हिन्दी में भारतेंदु हरिश्चंद्र, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, दुष्यंत कुमार, मैथिलीशरण गुप्त, हरिकृष्ण 'प्रेमी', रामदरश मिश्र, महावीर शर्मा, उदयभानु हंस, बालस्वरूप राही, सोहन राही, बलबीर सिंह रंग, राम अवतार त्यागी, गोपाल दास नीरज, शंभु नाथ शेष, शेरजंग गर्ग, लक्ष्मण दुबे, विनोद तिवारी, चन्द्रसेन विराट, हस्तीमल हस्ती, अदम गौंडवी, कुँअर बेचैन, जानकी प्रसाद शर्मा, जहीर कुरैशी, रामकुमार कृषक, शिवओम अंबर, परमानंद पांडेय, विनय मिश्र, उर्मिलेश, ज्ञानप्रकाश विवेक, अशोक अंजुम, महेश अनघ, उषा राजे सक्सेना, मधुवेश, देवी नांगरानी, दीक्षित दनकौरी, देवमणि पांडेय, तेजेन्द्र शर्मा, गौतम सचदेव, द्विजेन्द्र द्विज, सतपाल ख्याल आदि के अशआर बेशुमार उम्दा हैं। सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में हैं, देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में हैं (राम प्रसाद बिस्मिल)। उनके लगे चार चाँद शायरी का संसार रोशन किए हुए हैं। मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना, हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा (इकबाल)। वाहवाहियां न तब थमी थीं, न आज तक। ये नगमा सराई है कि दौलत की है तकसीम, इन्सान को इन्सान का गम बाँट रहा हूं (फिराक)।

## ग़ज़ल, मिसरा से मक़्ता तक

पहले 'फिराक' गोरखपुरी के खयालात जानिए, फिर ग़ज़ल की बात। 'फिराक' साहब लिखते हैं- 'जब कोई शिकारी जंगल में कुत्तों के साथ हिरन का पीछा करता है और हिरन भागते-भागते किसी ऐसी झाड़ी में फंस जाता हैं, जहां से वह निकल नहीं सकता, उस समय उसके कंठ से एक दर्द भरी आवाज निकलती हैं, उसी करुण स्वर को ग़ज़ल कहते हैं।' अब ग़ज़ल की कुछ जरूरी बातों की ओर चलते हैं-

## मिसरा

ग़ज़ल के हर शेर में दो पंक्तियां होती हैं। शेर की हर पंक्ति को मिसरा कहते हैं। प्रत्येक शेर अपने आप में एक संपूर्ण कविता होता है और उसका संबंध ग़ज़ल में आने वाले अगले पिछले अथवा अन्य शेरों से हो, यह जरूरी नहीं हैं। किसी ग़ज़ल में अगर 12 शेर हों तो यह कहना गलत न होगा कि उसमें 12 स्वतंत्र कविताएं हैं। शेर के पहले मिसरे को 'मिसर-ए-ऊला' और दूसरे को 'मिसर-ए-सानी' कहते हैं।

## मत्ला

ग़ज़ल के पहले शेर को 'मत्ला' कहते हैं। इसके दोनों मिसरों में यानि पंक्तियों में 'काफिया' होता हैं। अगर ग़ज़ल के दूसरे सेर की दोनों पंक्तियों में भी काफिया हो तो उसे 'हुस्ने-मत्ला' या 'मत्ला-ए-सानी' कहा जाता हैं।

## काफिया

वह शब्द जो मत्ले की दोनों पंक्तियों में और हर शेर की दूसरी पंक्ति में रदीफ के पहले आये उसे 'काफिया' कहते हैं। काफिया बदले हुए रूप में आ सकता हैं। लेकिन यह जरूरी हैं कि उसका उच्चारण समान हो, जैसे बर, गर तर, मर, डर, अथवा मकां, जहां, समां इत्यादि।

## रदीफ

प्रत्येक शेर में 'काफिये' के बाद जो शब्द आता हैं उसे 'रदीफ' कहते हैं। पूरी ग़ज़ल में रदीफ एक होती हैं। कुछ ग़ज़लों में रदीफ नहीं होती। ऐसी ग़ज़लों को 'गैर-मुरद्दफ ग़ज़ल' कहा जाता हैं।

## मक़्ता

ग़ज़ल के आखरी शेर को जिसमें शायर का नाम अथवा उपनाम हो उसे 'मक़्ता' कहते हैं। अगर नाम न हो तो उसे केवल ग़ज़ल का 'आखरी शेर' ही कहा जाता हैं। शायर के उपनाम को 'तखल्लुस' कहते हैं। निम्नलिखित ग़ज़ल के माध्यम से अभी तक ग़ज़ल के बारे में लिखी गयी बातें आसान हो जायेंगी।

# हम इसे हिंदी ग़ज़ल कहें कि उर्दू ग़ज़ल !

**हिंदी और उर्दू के बीच में एक शीशे की दीवार है, जिसका हटाना आज जरूरी हो गया है। हिंदी ग़ज़ल को गीतिका नाम देने का प्रयास भी किया गया, जो सफल नहीं हुआ क्योंकि गीतिका और हरिगीतिका छंद हमारे हिंदी में पिंगल शास्त्र में पहले से ही हैं। काफिया और रदीफ को समान्त और पदांत कहने की भी क्या आवश्यकता है। यदि हम हिंदी में रदीफ , काफिया, और ग़ज़ल जैसे शब्दों को यथावत स्वीकार करलें तो क्या हमारी भाषा और भी समृद्ध नहीं हो जाएगी?**

– डॉ. कृष्ण कुमार 'बेदिल'

ग़ज़ल उर्दू साहित्य की एक मकबूल विधा है। ग़ज़ल उर्दू में फारसी से आई। आज से लगभग चार दशक पहले तक ग़ज़ल का विषय केवल संयोग या वियोग श्रृंगार था। ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ ही औरतों से बात करना है। ग़ज़ल में उन जज्बात का इजहार किया जाता था, जो हुस्न और इश्क के असर से इंसान के दिल मे पैदा होते हैं। पुरानी ग़ज़लों में प्रकृति चित्रण भी बखूबी मिलता है। ग़ज़लों में शराब, साकी, पैमाना का जिक्र भी बहुतायत से मिलता है लेकिन आज स्थिति बदल चुकी है। ग़ज़ल को विस्तार मिला है। जो ग़ज़ल महलों और हवेलियों की जीनत बनी हुई थी, वही ग़ज़ल आज आम आदमी के दिल में बसी हुई है। शायद इसका कारण ग़ज़ल का विषय परिवर्तन है और इसका श्रेय दुष्यंत कुमार को दिया जाता है।

हिंदी के कवि दुष्यत कुमार को हिंदी ग़ज़ल का जनक मानते हैं लेकिन मेरा ऐसा मानना है कि ग़ज़ल को हिंदी और उर्दू में बांटना गलत है। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में विषय तो बदला है, उन्होंने सामाजिक सरोकार की बात कही है, जो ग़ज़ल इश्क और हुस्न को सदियों से ढो रही थी, उसमें बदबू आने लगी थी। दुष्यंत कुमार ने उसे महलों से निकाल कर आम आदमी तक पंहुचाया, लेकिन उसमें हिंदी कहाँ है। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें परंपरागत बहरों में हैं। उनकी जुबान भी हिंदुस्तानी है। मिसाल के तौर पर ये शेर देखिये-

*कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए।*
*कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।*

इस ग़ज़ल की बह्र है.....बहरे मुजतस मुसम्मन मखबून मकतूअ, और इसके अरकान हैं..... मुफायलुन फइलातुन मुफायलुन फैलुन । अब प्रश्न ये उठता है कि हम इसे हिंदी ग़ज़ल कहें या उर्दू

ग़ज़ल कहें। क्या सिर्फ ग़ज़ल के विषय को विस्तार देने से ही कोई ग़ज़ल हिंदी ग़ज़ल हो जाएगी? दरअस्ल हिंदी और उर्दू में कोई ज्यादा फर्क मेरी नजर में नहीं है। उसी बात को देवनागरी में लिखें तो हिंदी और फारसी लिपि में लिखें तो उर्दू हो जाती है। हिंदी और उर्दू के बीच में एक शीशे की दीवार है, जिसका हटाना आज जरूरी हो गया है। हिंदी ग़ज़ल को गीतिका नाम देने का प्रयास भी किया गया, जो सफल नहीं हुआ क्योंकि गीतिका और हरिगीतिका छंद हमारे हिंदी में पिंगल शास्त्र में पहले से ही हैं। काफिया और रदीफ को समान्त और पदांत कहने की भी क्या आवश्यकता है। यदि हम हिंदी में रदीफ , काफिया, और ग़ज़ल जैसे शब्दों को यथावत स्वीकार करलें तो क्या हमारी भाषा और भी समृद्ध नहीं हो जाएगी?

किसी भी विधा को उत्कर्ष पर पहुंचने के लिए चार दशक कम नहीं होते। आज की ग़ज़ल जीवन की हर समस्या से सम्बद्ध है। अब उर्दू ग़ज़लकार भी सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक विसंगतियों पर खुल कर प्रहार कर रहे हैं। वो भी ऊंच-नीच, भ्रष्टाचार, शोषण, साम्प्रदायिकता और संकीर्णता से उद्विग्न हैं और हिंदी के कवि जो ग़ज़ल कह रहे हैं वो अभी ग़ज़ल को हिंदी और उर्दू के खांचे में बांटने पर तुले हैं, जो ग़ज़ल के हित में नहीं है। हमें इस मानसिकता से बाहर निकलना होगा, तभी ग़ज़ल का विकास संभव है।

(संपर्क : 9410093943)

# इस सरापा हूर को कुछ रूह के गहने भी दें : रामकुमार कृषक

आभासी दुनिया में दुष्यंत कुमार के बहाने हिंदी ग़ज़ल के समकालीन परिदृश्य पर चली एक और बहस के बीच वरिष्ठ कवि रामकुमार कृषक लिखते हैं- हिंदी ग़ज़ल को लेकर जो विचार किया जा रहा है, उसमें मैं एक शेर के सहारे शामिल हो रहा हूं- 'हम नहीं कहते ग़ज़ल के हुस्न पर मत जाइए / इस सरापा हूर को कुछ रूह के गहने भी दें।' कवयित्री भावना तिवारी लिखती हैं - हिंदी ग़ज़ल पर चर्चा की शुरूआत वरिष्ठ जनधर्मी समीक्षक डॉ. जीवन सिंह और समापन हिंदी के महत्वपूर्ण कवि माहेश्वर तिवारी के वक्तव्य से हुई। इसमें प्रो. शम्भूनाथ तिवारी, नित्यानन्द श्रीवास्तव, 'कविकुंभ' की संपादक रंजिता सिंह, रामबाबू रस्तोगी, डॉ. जियाउर रहमान जाफरी, मृदुला अरुण, डॉ. सिद्धार्थशंकर त्रिपाठी, जयप्रकाश श्रीवास्तव, कान्ता शर्मा, किशन तिवारी, लवलेश दत्त आदि की भी सहभागिता रही।

# मुझे अगले दुष्यंत कुमार की प्रतीक्षा है : माहेश्वर तिवारी

ग़ज़ल को उर्दू और हिंदी के चश्मे से देखने की वजह उसके काफिया, रदीफ की जमीन है। दूसरी बात, यह एक भ्रम ही है कि हिंदी ग़ज़ल का इतिहास लिखने वाले जब उसे कबीर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से जोड़ कर देखते हैं, जो भाषायी भ्रम खड़ा करते हैं। कबीर के जिस ग़ज़ल का उदाहरण दिया जाता है, उसकी भाषा का रूप वह हिंदी नहीं है, जिस हिंदी में निराला, त्रिलोचन शास्त्री आदि ने ग़ज़लें लिखी हैं, यही हिंदी आगे चलकर दुष्यन्त कुमार में देखने को मिलती है। भारतेन्दु ने तो उर्दू परम्परा में अपना उपनाम 'रसा' रखा था। खैर यह लम्बी चर्चा का विषय है। दुष्यन्त कुमार ने मुक्त छन्द में भी महत्वपूर्ण लेखन किया और गीत, ग़ज़ल के रूप में छान्दसिक कविताएँ भी लिखते रहे। उनके ग़ज़ल संग्रह 'साये में धूप' की ग़ज़लें एक रचनात्मक तैयारी के बाद लिखी गईं। उनमें नई कविता की भंगिमा और गालिब, मीर से लेकर फैज, ताज भोपाली की तरक्कीपसंद शायरी से ली गई रचना दृष्टि रही। वे उर्दू भाषा से शमशेर जी की तरह परिचित नहीं थे लेकिन आकाशवाणी भोपाल के अधिकारी और अपने मित्र शुंगलू साहब से ग़ज़ल की क्लासिकी रवायत समझी और फिर ग़ज़ल में उतरे। मुझे याद है, 1975 में आपातकाल के दौरान लगभग हर हफ्ते कोई नई ग़ज़ल डॉ. विजय बहादुर सिंह को पत्र में लिख कर भेजते रहे, जिसे सिंह साहब मुझसे शेयर करते रहे। उनकी ग़ज़लों की जमीन नई और सर्वथा कुछ अलग ताजगी से भरी थी। दुष्यन्त जी से पहले यह काम शमशेर जी और त्रिलोचन कर चुके थे। दुष्यन्त जी के बाद अभी हम अगले दुष्यंत कुमार की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अदम गोंडवी और दुष्यन्त कुमार अलग हैं न।

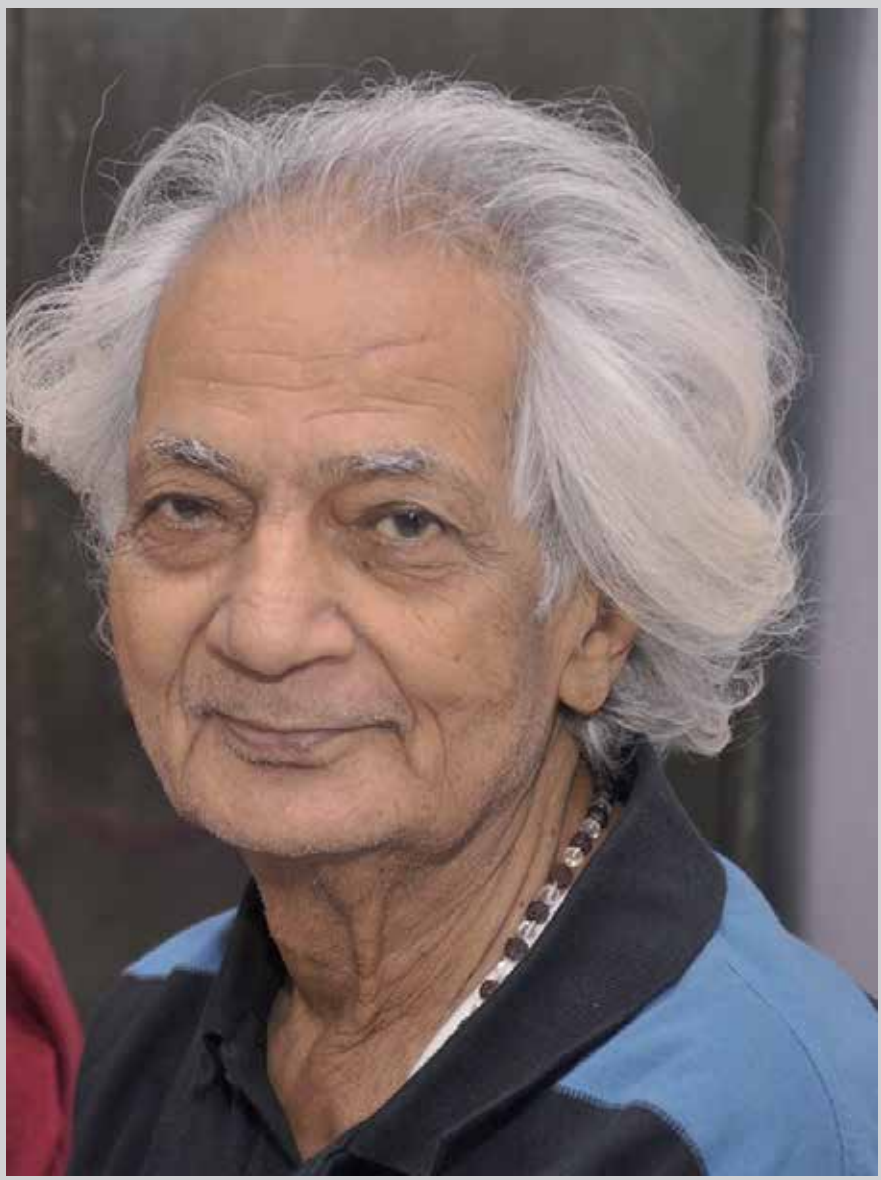

शलभ श्रीराम सिंह उर्दू के अधिक नजदीक हैं। स्व.अखिलेश अंजुम, महेंद्र नेह, विनय मिश्र, राम कुमार कृषक, देवेंद्र आर्य, कलात्मकता, आधुनिकता, प्रगतिशीलता की मिलीजुली जमीन पर कमलेश भट्ट कमल जैसे कुछ अन्य लोग भी काम कर रहे हैं लेकिन मेरी दुष्यन्त कुमार की तलाश अभी बनी हुई है।

# आत्मविमुग्धता लेखक के लिए आत्महत्या के समान: नचिकेता

गीत और ग़ज़ल की कला बिंब, प्रतीक और संकेतों के समन्वय और सामंजस्य की कला है। इनका रूपाकार इतना संक्षिप्त होता है कि यहाँ स्थितियों के विवरण और विश्लेषण की गुंजाइश बहुत कम होती है। अगर दुष्यंत कुमार के प्रतीकों और संकेतों को समझेंगे तो आपको उनके सपने और निदान दोनों मिल जाएँगे। पलायन तो हरगिज नहीं मिलेगा। दरख्त तानाशाह नेता और बड़ी राजनीतिक पार्टी का तथा धूप समस्याओं का प्रतीक है। कला-साहित्य की हर विधा की अपनी शक्ति और सीमा होती है, जिसमें सामाजिक चेतना और संवेदना के विकास के अनुरूप विकास और विस्तार होता रहता है। हर विधा स्वतंत्र और स्वावलंबी होती है। इसके बावजूद इनमें परस्पर अंतरावलंबन होता है। एक विधा का काम दूसरी विधा से नहीं लिया जा सकता। लेखक प्रायः अपनी सीमा को ही विधा की भी सीमा मान लेता है। गालिब ने भी यही किया है। गालिब महान रचनाकार हैं, लेकिन उसी अर्थ में महान नहीं हैं जिस अर्थ में प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध और नागार्जुन हैं। समकालीन हिंदी ग़ज़ल की अभिव्यक्ति का परिसर गालिब से अधिक चौड़ा और समयसापेक्ष है। जाहिर है कि आज की हिंदी ग़ज़ल का मूल्यांकन गालिब के प्रतिमान से करना लाजमी नहीं है और न समीचीन ही। शेरियत ग़ज़ल की आत्मा है और शेर की आत्मा जीवन-जगत की वास्तविकता ही है। इस समयसापेक्ष और समाजसापेक्ष वास्तविकता की अभिव्यक्ति जितनी गहरी और व्यापक होगी, रचना उतनी ही अधिक प्रभावशाली और अर्थपूर्ण होगी। स्पष्ट है, रूपाकार समृद्धि के लिए अंतर्वस्तु की बलि नहीं दी जा सकती। .... आत्मविमुग्धता लेखक के लिए आत्महत्या के समान है।

# इस तरह तो तुलसीदास को उर्दू का कवि कह देना चाहिए: रामचरण राग

हिन्दी ग़ज़ल की निजता की जमीन, जिसमें अपने समय का खुरदरा यथार्थ है, उसकी अपनी भाषिक चेतना का ही परिणाम है। उसकी जनपक्षधरता, बिम्ब धर्मिता, सांकेतिकता और मुहावरों का अपना संसार है, जिसका ताना-बाना उसने उर्दू समेत संस्कृत, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, ब्रज, अवधी आदि सैकड़ों बोलियों और भाषाओं से बुना है। इसीलिए केवल कुछ शब्दों के प्रयोग के आधार पर किसी कवि को उस भाषा का ही कवि घोषित कर देना उचित नहीं है। ऐसे तो ह्लगई बहोर गरीब निवाजूह्व के प्रयोग के कारण तुलसी दास को उर्दू का कवि कह देना चाहिए। इसी तरह उर्दू, फारसी, अरबी बहुल शब्दों के प्रयोग से दुष्यंत कुमार उर्दू के शा'यर नहीं हो जाते। देखना ये पड़ेगा कि कवि की समग्र चेतना और समझ किस भाषा से विकसित हुई है। इसी आधार पर हिन्दी ग़ज़ल अपने समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति के संदर्भों में उर्दू ग़ज़ल से बहुत आगे है, और दुष्यंत कुमार निर्विवाद रूप से हिन्दी कविता परंपरा के महत्वपूर्ण ग़ज़लकार हैं।

# इस पीर से जरूर कोई गंगा निकलेगी : डॉ. जीवन सिंह

हिंदी में लिखी जाने वाली ग़ज़ल का लगभग एक शती पुराना इतिहास है। उसमें दुष्यंत कुमार का महत्व इसलिए है कि उन्होंने उसे समकालीनता की आंदोलनकारी जमीन पर ईमानदारी से खड़ा किया। याद करिए, 1975 और उससे कुछ पहले वाले वर्षों को, जब जे पी के नेतृत्व में, इंदिरा गाँधी की तानाशाही के विरुद्ध खड़े हुए भारतीय जन की बेचैनी और तनावों को महसूस कर रहे थे। उस समय मध्यवर्ग भी अभावग्रस्तता का शिकार था। खाद्यान्न तक की कमी थी और भ्रष्टाचार, बेरोजगारी सभी कुछ तो आज जैसा था, लेकिन उसके साथ-साथ जन-आंदोलन भी था। उसी वातावरण से नयी ग़ज़ल पैदा हुई थी। इसीलिए उनकी ग़ज़ल चोट खाए व्यक्ति का मुकम्मल बयान बनती है। उनकी ग़ज़ल में अखबारी खबर नहीं, जीवन की तरंगें हैं। हृदयों और दिमागों की वे बेचैनियाँ हैं, जो विषमता और अन्याय को जान-महसूस कर व्यक्त हुई हैं। आज फिर से वैसा ही माहौल बन रहा है। इस पीर (पीड़ा) से जरूर ही कोई गंगा निकलेगी।

# शब्द और संस्कृति को समझे बिना दुष्यंत पर बात अधूरी

हिंदी और उर्दू का कवि कहलाने के लिए पहला कारण ही भाषा है, अन्य कारण तो बाद में हैं। ग़ज़ल कहने से पहले से ही दुष्यंत कुमार हिंदी में नयी कविता के प्रतिनिधि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। सूर्य का स्वागत, एक कंठ विषपायी उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। जहाँ तक ग़ज़ल कहने की बात है, उनकी एकमात्र लोकप्रिय कृति 'साये में धूप' की भूमिका में जब उन्होंने स्वयं ही स्वीकार लिया कि मैं उर्दू नहीं जानता तो वे उर्दू शायरी के कवि कैसे हो गए। कविता की पहचान में शब्द से लेकर संस्कृति तक की एक महत्वपूर्ण यात्रा है, जिसको समझे बिना दुष्यंत पर बात अधूरी रहेगी।

# ग़ज़ल न तो उर्दू, न हिन्दी की बपौती

– डॉ. विनय मिश्र

हिन्दी में ग़ज़ल का विकास उर्दू की बनिस्बत अधिक यथार्थपरक तरीके से हुआ। पहली बात तो यह कि हिन्दी को कभी कोई दरबारी संरक्षण नहीं मिला और अपने बनते-बिगड़ते रूपों में प्रारम्भिक काल से ही यह अभावग्रस्त लोक की गोद में फलती-फूलती रही। अतः इसके 'टोन' में एक तंज, एक व्यंजना का घुलाव निरन्तर बना रहा। अनेक बोलियों की संजीवनी पाकर इसकी आभा द्विगुणित हुई तो इसके पीछे भी इसकी भाषा उद्भावना की सर्वग्राही शक्ति ही थी अन्यथा फारसी की राजशाही तकरीबन सात-आठ सौ साल तो रही ही। साफ है कि बोली-बानी का विकास राजाज्ञाओं का मोहताज नहीं होता और जनता अपनी तरह से किसी भी लोकप्रिय भाषा को संस्कारित और समृद्ध करती चलती है। रेख्ता से आज तक की हिन्दी की यात्रा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

दूसरी बात यह कि उर्दू के जन्म के काफी पहले से ही हिन्दी में प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा जा चुका था और हिन्दी कवियों ने रचनाकर्म के लिए तब की परिस्थितियों में लोकप्रिय अनेक प्रचलित छंदों का भरपूर उपयोग किया। ठहरे हुए जीवन के व्यापक अवकाश ने उन्हें शायद काव्य सर्जना हेतु विविध छंदों का वह आकाश सुलभ कराया जिसमें जीवन अपनी विशदता में प्रस्तुत हो सका। यद्यपि ग़ज़ल भी अन्य काव्य रूपों की तरह एक विधा के रूप में उनके सामने उपस्थित थी किन्तु उसके पारम्परिक स्वरूप के सीमाबोध का आग्रह सम्भवतः जीवन के विस्तृत सन्दर्भों के चित्रण हेतु उन्हें आकर्षित न कर सका। यह बात इसलिए भी सही लगती है कि आज के समय में भी विश्व की तमाम भाषाओं और बोलियों में ग़ज़ल कहे, लिखे और सुने जाने के बावजूद एक बड़ा वर्ग उसकी पुरानी रिवायत से छेड़छाड़ का सख्त विरोधी दिखाई पड़ता है भले ही उस वर्ग के आचरण में खड़िया स्लेट की जगह कम्प्यूटरों को जगह मिल गई हो।

हिन्दी में छायावादी कविता के बाद के समय को अगर 'कुनबाई कविता काल' कहा जाये तो अनुपयुक्त न होगा। कभी वादों, कभी प्रवृत्तियों, कभी व्यक्तित्वों के नाम पर कविता के मंदिर में शिलापट्ट लगाने की होड़, एक ऐसे उद्योग या फैशन के घटाटोप के रूप में खड़ा हुआ कि हिन्दी कविता धीरे-धीरे आमजन की आँखों से ओझल होकर कुछ अकादमिक किस्म के लोगों के लाभार्थ रह गई। रही सही कसर प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, टी.वी. और कम्प्यूटरों ने किताबों को हाशिये पर लाने की व्यावसायिक जिद से पूरी कर दी और अब जो कुछ हो रहा है, उसका अधिकांश कविता नहीं, कविता के नाम पर है और वह भी चतुर कवियों की सतही संवेदनाओं की मार्केटिंग भर है जिसमें लिखना पढ़ना कम किन्तु राजकवि, पीठकवि, प्रवासी कवि, सुपर स्टार, आइकॉन और सेलिब्रिटी का वैश्विक सम्मान पाने की लालसा अधिक मुखर दिखाई पड़ती है।

इस रंगारंग माहौल के पर्दे के पीछे की दुनिया की त्रासदी की सुध कविताओं में ईमानदारी से बहुत कम ही ली जा रही है। हिन्दी में कही जा रही ग़ज़लों ने यह काम बड़ी जिम्मेदारी व ईमानदारी से किया है। लोकतंत्र की रस्म अदायगी के नाम पर काबिज सत्ता के झूठे चरित्र को उजागर करने के लिए हिन्दी में ग़ज़ल ने अपनी नयी मुहावरेदारी ईजाद की है, जो आमजन के साथ भी है और सच्चाई के बेलौस अंदाज में भी।

आज सही मायने में पराधीन भारतीय मन की वेदना की अभिव्यक्ति इन ग़ज़लों में निरन्तर हो रही है तो इसकी वजह इनका लोकप्रिय होना नहीं वरन् अपने समय की गहराई में डूबकर अपने समकालीन यथार्थ के स्वर को बाहर निकाल लाने की जिद है। किन्तु इसके साथ ही ग़ज़ल से जुडे.सवालों से दो-चार होना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि इनसे होकर ही हिन्दी कविता के परिदृश्य में लिखी जा रही ग़ज़लों की समझ का रास्ता खुलता है।

पहला सवाल विधा के नामकरण को लेकर है। आज ग़ज़ल बनाम हिन्दी ग़ज़ल को लेकर नासमझ बयानबाजियाँ उछाल पर हैं। सचाई यह है कि ग़ज़ल न तो उर्दू की, न ही हिन्दी की बपौती है। इसलिए यह जरूरी है कि इस विधा को राजनीतिक चश्मे से न देखा जाये, न ही इसे कुछ और मजहबी रंग दिया जाये क्योंकि यह सवाल कुछ वैसा ही है, जैसे हम कहें कि काव्यशास्त्र अगर संस्कृत भाषा की उपज है तो हिन्दी कविता को संस्कृत सम्मत काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से क्यों परखा जाए जबकि हिन्दी और संस्कृत दो अलग-अलग भाषाओं के रूप में स्थापित हैं। एक और बात कि कई विधाएँ अपने रूपाकार एवं व्यंजना शक्ति के कारण अपनी मूल भाषा परिधि का अतिक्रमण करती रही हैं, जैसे दोहा जैसा लोकप्रिय छंद अपभ्रंश से आगे चलकर अवधी, ब्रज, हिन्दी, उर्दू आदि अनेक भाषाओं और बोलियों में सैकड़ों वर्षों से सुना और लिखा-पढ़ा जाता रहा है तो इसके लिए किसी भाषा या बोली के दोहाकार को, अपभ्रंश भाषा को कोई रोड टैक्स नहीं देना पड़ा है। वैसे उर्दू में भी ग़ज़ल अरबी और फारसी से होती हुई ही आई है। मजा यह है कि एक विधा के रूप में ग़ज़ल, हिन्दी कवियों के सामने तब भी मौजूद थी, जब उर्दू का कोई अस्तित्व ही नहीं था। भला हो कबीर जैसे मस्तमौला भक्त कवियों का जो दोहा, साखी के साथ-साथ ग़ज़लों को भी अपने रंग में ढालते रहे।

*'कविकुंभ' पटना और गोरखपुर में।*

# देश के शीर्ष कवि-साहित्यकारों के साथ कविकुंभ

दिल्ली। मार्च में दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में आयोजित भव्य प्रकाशनोत्सव के बाद से 'कविकुंभ' की परिचयात्मक कविता-यात्रा अब तक देश की राजधानी सहित सात राज्यों उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, गुजरात, उड़ीसा के साहचर्य में पहुंच चुकी है। सीमित संसाधनों में प्रकाशित हो रहे इस हिंदी मासिक की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इसने देश के शीर्ष कवि-साहित्यकारों की प्रेरणा और प्रोत्साहन से हिंदी पट्टी के 14-15 राज्यों के अलावा हिंदीतर महाराष्ट्र, गुजरात और प.बंगाल में भी अपना बड़ा पाठक वर्ग साझा किया है।

'कविकुंभ' के इस यात्राक्रम में पिछले दिनो राजस्थान के अलवर और जयपुर में वरिष्ठ कवि-साहित्यकारों के बीच पत्रिका की सुखद उपस्थिति रही। अलवर में कविकुंभ को देश के वरिष्ठ कवि एवं संस्कृतिकर्मी आनंद परमानंद, जाने-माने आलोचक डॉ. जीवन सिंह, प्रसिद्ध कवि रामकुमार कृषक, युवा कवि डॉ. विनय मिश्र एवं रामचरण राग, सृजक संस्थान की अध्यक्ष डॉ. अंजना अनिल, पद्मश्री सूर्यदेव बारेठ, महेन्द्र शास्त्री, डॉ. आर सी खण्डूरी, डॉ. वी के अग्रवाल, इन्द्रकुमार तोलानी, डॉ. कैलाश पुरोहित, डॉ. एससी मित्तल, भागीरथ मीणा, कैप्टन केएल सिरोम, घनश्याम,

*'कविकुंभ' राउरकेला (ओडिशा) में।*

*'कविकुंभ' बरेली (उ.प्र.), डॉल्टनगंज (झारखंड) और सिवान (बिहार) में।*

राज गुप्ता, विजय लक्ष्मी, वेदप्रकाश, श्रीनिवास अग्रवाल, डॉ. अशोक शुक्ला, डॉ. छंगाराम मीणा, एडवोकेट हरिशंकर गोयल, प्यारे सिंह, डॉ. अंशु वाजपेयी, डॉ. अस्मिता मिश्रा, डॉ. नरेन्द्र वर्मा, डॉ. वेदप्रकाश यादव, डॉ. वीरेन्द्र विद्रोही, डॉ. मीना गौतम, खेमेन्द्र सिंह चन्द्रावत, बाला प्रसाद सैनी, हेमराज सैनी आदि का स्नेह मिला। जयपुर दूरदर्शन केंद्र निदेशक रमेश शर्मा, पूर्व निदेशक चंद्रकुमार वरठे, वरिष्ठ पत्रकार-लेखक राधेश्याम तिवारी, सुशीला शील, शिवानी, निरुपमा आदि की 'कविकुंभ' विमर्श में उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

यात्रा के दौरान बिहार के पटना एवं सिवान शहरों में भी 'कविकुंभ' ने दस्तक दी। इस दौरान देश के वरिष्ठ जनकवि नचिकेता, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, गंगेश गुंजन, प्रो.डॉ. बलराम तिवारी, राजभाषा संस्थान के निदेशक रामविलास पासवान, कवयित्री उषाकिरण खान, कवि मदन

'कविकुंभ' अलवर (राजस्थान) में।

कश्यप, अरुण कमल, शायर आलम खुर्शीद, गजलकार अनिरुद्ध सिन्हा, भावना शेखर, आशा प्रभा, डॉ.बच्ची सिंह, आरती आलोक सिन्हा, सुनील तंग इनायतपुरी, प्रचंड आदि ने 'कविकुंभ' को सराहा और स्नेह दिया। गोरखपुर (उ.प्र.) में 'कविकुंभ' को अंतरराष्ट्रीय ख्याति के शायर कलीम कैसर, वरिष्ठ कवि नरसिंह बहादुर चंद कौशिक, गजलकार महेश अश्क, कवि नित्यानंद, प्रेमप्रकाश मिश्रा, कवयित्री डॉ. चेतना पांडेय आदि का सान्निध्य मिला।

स्व. महाश्वेता देवी आत्मीय शहर डॉल्टनगंज में झारखण्ड विधानसभा के प्रथम अध्यक्ष रहे इन्दर सिंह नामधारी, वरिष्ठ पत्रकार पंकज श्रीवास्तव, कवयित्री लक्ष्मी करियारे, शमीर्ला शुमी, संगीता कुजारा टाक, रश्मि शर्मा, रेणु मिश्रा, अनुपमा तिवारी, कल्पना तिवारी, सुष्मा श्रीवास्तव, अनीता शुक्ला, शालिनी श्रीवास्तव, वीणा श्रीवास्तव, नरेश साह, शिखर शशि, धीरज, मिर्जा खलील बेग, उमेश कुमार पाठक,अमन चक्र, हरबंस प्रभात, विवेक सहाय ने देश की श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका के रूप में 'कविकुंभ' का मूल्यांकन किया।

अहमदाबाद (गुजरात) में 'कविकुंभ' को सम्पत लोहार, मनोज सोनी, अनन्या, राजस्थान पत्रिका के संपादक प्रदीप जोशी, आशीष कुमार आदि का सरस काव्य उत्सव के रूप में साहचर्य मिला।

भोजपुरी की प्रसिद्ध गायिका देवी की पुस्तक 'माइ डायरी नोट्स' के विमोचन का दृश्य।

'कविकुंभ' ऋषिकेश (उत्तराखंड) में।

राउरकेला (उड़ीसा) में देश के जाने-माने नवगीतकार डॉ. मधुसूदन साहा, संकल्प के अध्यक्ष एवं सुपरिचित गजलकार डॉ. कृष्ण कुमार प्रजापति, कवि-व्यंग्यकार डॉ. श्यामलाल सिंघल, श्याम सुंदर सोमानी, गीतकार डॉ.संतोष कुमार श्रीवास्तव, गजलकार जफर सिद्दीकी आदि के साथ 'कविकुंभ' का समागम हुआ।

देहरादून (उत्तराखंड) में प्रदेश के वित्तमंत्री प्रकाश पंत, देश के जाने-माने कवि लीलाधर जगूड़ी, वरिष्ठ कवि बुद्धिनाथ मिश्र, कवयित्री गीता गैरोला, गीतकार असीम शुक्ला, वरिष्ठ गजलकार मुनीशचंद्र सक्सेना, कवि आनंद दीवान, पूरनचंद, हिंदी अकादमी अध्यक्ष सुशील उपाध्याय, पत्रकार राजकुंअर अस्थाना, वरिष्ठ शायर नदीम बरनी, वीरेंद्र डंगवाल पार्थ, लेखिका वीणापाणि, कांग्रेस के प्रदेश प्रवक्ता प्रदीप भट्ट आदि ने 'कविकुंभ' को स्नेह दिया। ऋषिकेश के उपवन क्षेत्र स्थित देवी संगीत आश्रम में वरिष्ठ साहित्यकार प्रो. प्रमोद कुमार की यशस्वी पुत्री एवं भोजपुरी की प्रसिद्ध गायिका, अभिनेत्री देवी की पुस्तक 'माइ डायरी नोट्स' के प्रकाशनोत्सव के दौरान कवि एवं प्रशासक परवेज आलम, फिल्म निदेशक राज, गायिका नीति, कवि ओमप्रकाश, कवि सुंदर सिंह आदि का 'कविकुंभ' को विशेष साहचर्य मिला।

'समय कठिन है' गीत संग्रह का प्रकाशनोत्सव

# रामचरण राग के नवगीतों में अपने समय का यथार्थ: रामकुमार कृषक

*अलवर (राजस्थान) में रामचरण राग के नवगीत संग्रह 'समय कठिन है' के प्रकाशनोत्सव की एक झलक।*

अलवर (राजस्थान)। युवा कवि रामचरण 'राग' के पहले गीत संग्रह 'समय कठिन है' के लोकार्पण समारोह की अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ जनधर्मी कवि रामकुमार कृषक ने कहा कि अपने समय की चुनौतियों और सरोकारों को गीत जैसी विधा में कहना एक कठिन काम है लेकिन राम चरण 'राग' ने ये काम पूरी सच्चाई और ईमानदारी के साथ किया है। उनके नवगीतों में अपने समय का यथार्थ तो है ही, उनके अपने मन की वे बैचेनियाँ भी मौजूद हैं, जिनको अनुभूति के स्तर पर प्रकट करना एक चुनौतीपूर्ण काम है। राम चरण 'राग' ने यह दायित्व इस संकलन में अपने गीतों के जरिये पूरी संवेदनशीलता के साथ निभाया है।

मुख्य अतिथि के रूप में वाराणसी के बुजुर्ग कवि एवं संस्कृतिकर्मी आनंद परमानंद ने कहा कि राम चरण 'राग' के गीतों में गरीबों के साथ हमदर्दी है, व्यवस्था के प्रति आक्रोश है और अपने समय से दो-दो हाथ करने का माद्दा है।

विशिष्ट अतिथि के रुप में दिल्ली-उत्तराखंड से पधारीं साहित्यिक पत्रिका 'कविकुंभ' की संपादक रंजीता सिंह ने इस संग्रह को अपने समय और समाज का जीवन्त दस्तावेज मानते हुए कहा कि भविष्य में उनके गीतों का फलक और विस्तृत होगा। पत्रकार जयप्रकाश त्रिपाठी ने कहा कि राम चरण राग के गीत सत्ता के चरित्र का प्रतिवाद करते हैं और उसे चेतावनी भी देते हैं। समारोह के मुख्य वक्ता एवं शीर्ष आलोचक डॉ. जीवन सिंह ने गीत को आमजन की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने वाला सशक्त माध्यम बताते हुए कहा कि राम चरण राग अपने समय की विसंगतियां से पूरी तरह परिचित हैं और तभी इनके गीतों में अपने समय की कठिनाइयों का बेबाकी से चित्रण हो पाया है।

ख्यातिलब्ध युवा कवि डॉ. विनय मिश्र ने पुस्तक पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि अपने समय का यथार्थ जितना क्रूर और भयावह है, राम चरण 'राग' के गीत बड़ी निडरता, ईमानदारी व सच्चाई के साथ डटकर उसका मुकाबला करते हैं। इसलिए इनको सच के साथ खड़ा रहने वाला कवि कहा जाना चाहिए। इस अवसर पर दिल्ली से पधारे भाषाविद डॉ. परमानन्द ने राम चरण 'राग' के गीतों में आमजन से संवाद करती भाषा के महत्व को रेखांकित किया। सृजक संस्थान की अध्यक्ष डॉ. अंजना अनिल ने सभी अतिथियों का स्वागत एवं परिचय प्रस्तुत किया। इस अवसर पर शहर कवि-साहित्यकार, समाजसेवी बड़ी संख्या में उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन खेमेन्द्र सिंह चन्द्रावत एवं धन्यवाद ज्ञापन बाला प्रसाद सैनी ने किया।

*डॉल्टनगंज (झारखंड) में कवयित्री सम्मेलन की एक झलक।*

### झारखंड साहित्य परिषद और परिमल से जगमगाता डॉल्टनगंज

# दुनिया को सबक दे गए मस्ताना भगत सिंह

डॉल्टनगंज (झारखंड)। शहीदों की स्मृति में पिछले दिनो वरिष्ठ कवि-पत्रकार पंकज श्रीवास्तव के संयोजन में यहां के ऐतिहासिक शिवाजी मैदान में भव्य साहित्यिक-सांस्कृतिक समारोह का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में कवि-कवयित्रियों, इप्टा के रंगकर्मियों के अलावा नगर के हजारों सुधी श्रोताओं, दर्शकों ने भी आधी रात तक शिरकत की। इस अवसर पर आयोजित कवियत्री सम्मेलन की शुभारंभ छतीसगढ़ की कवयित्री लक्ष्मी करियारे ने सरस्वती वंदना से की। उत्तराखंड से शायरा, पत्रकार एवं बीइंग वूमन की राष्ट्रीय अध्यक्ष रंजीता सिंह फलक, रांची से संगीता कुजारा टाक, रश्मि शर्मा, रेणु मिश्रा, अनुपमा तिवारी, कल्पना तिवारी, सुषमा श्रीवास्तव, अनीता शुक्ला आदि ने अपनी रचनाओं से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किया। इसका सफल संचालन संयुक्त रुप से शर्मिला शुमि और शालिनी श्रीवास्तव ने किया। काव्य पाठ के साथ-साथ कवयित्री सम्मेलन की अध्यक्षता वीणा श्रीवास्तव ने की।

दुनिया को सबक दे गए मस्ताना भगत सिंह... शहीदेआजम भगत सिंह, राजगुरु एवं सुखदेव के मूल्यों को स्वर देते डॉल्टनगंज (झारखंड) के शिवाजी मैदान में जागरूक नागरिकों, इप्टा, शहादत समारोह समिति की ओर से अन्य कार्यक्रमों के बीच 'कविकुंभ' प्रकाशनोत्सव विशेष विमर्श का विषय रहा। कार्यक्रम के दौरान यहां कवि-साहित्यकारों, पत्रकारों एवं जागरूक नागरिकों ने बड़ी संख्या में शिरकत की। इस अवसर पर शहर के कवि-साहित्यकार डॉ.अरुण शुक्ला, विनीत प्रताप सिंह, कवि हरिवंश प्रभात, पंकज श्रीवास्तव, मिर्जा खलील बेग, नसीम रियाजी, रमेश कुमार सिंह, डॉ. विजय प्रसाद शुक्ला, अनीता शुक्ला, उमेश कुमार पाठक रेणु, एसपी द्विवेदी, अमन चक्र की उपस्थिति एवं संयोजन में उल्लेखनीय भूमिका रही। इस तीन दिवसीय शहादत यादगार दिवस के दौरान नगर में प्रभात फेरी के साथ देश के विभिन्न प्रांतों से आए रंगकर्मियों ने विभिन्न प्रस्तुतियां देकर पूरे नगर के मन में देश के शहीदों की स्मृतियां ताजा कर दीं।

यहां के युवा कवि-चित्रकार अमन चक्र लिखते हैं - 'न कोई गम है न खुन्नस मन में, न किसी के प्रति कोई गिला, मिलता रहा दिल खोलकर शहर अपना, राह में जो भी मिला।' मैं अपने शहर डाल्टनगंज को जितना भी जानता हूं, वह बहुत थोड़ा है। मेरी उम्र अपने शहर की साहित्यिक गतिविधियों को सहेजने के लिए भी बहुत छोटी है, परन्तु लगता है कि हमारा परिचय सदियों से रहा है। कर्नल डाल्टन ने इस शहर को बसाया था। यह शहर पलामू जिले का मुख्यालय है। पलामू ! पलामू का दर्शन स्व. महाश्वेता देवी के उपन्यासों में आसानी से हो जाता है। महाश्वेता देवी के साहित्य की पृष्ठभूमि पलामू रहा है, जहां गरीबी, बेरोजगारी, डायन प्रथा (अंधविश्वास) और बंधुआ मजदूरी जैसी समस्याएं व्यापक रूप से व्याप्त हैं। ऐसे माहौल में साहित्य संवर्द्धन बहुत मायने रखता है।

यहां के साहित्यिक स्त्रोतों की खोज करने पर ज्ञात होता है कि बीसवीं सदी में साहित्य का सूरज उगा था। सर्वप्रथम डाल्टनगंज के स्व. युगल किशोर अखौरी मुन्सिफ और उनकी पुत्री शिवकुमारी देवी की 'सावित्री' नामक पुस्तक का प्रकाशन 1915 ई. हुआ था। उसके बाद महादेव सहाय, गोपाल चन्द्र कविराज और कालीचरण साहू का उल्लेख आता है। इस काल के लेखकों तथ कवियों ने युग के अनुसार ही लोकगीत, सवैया, कविता आदि की रचना की थी।

डाल्टनगंज में साहित्यिक वातावरण निर्माण करने में यहां की साहित्यिक संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। यहां के पुस्तकालयों में 'अभ्युदय हिन्दी साहित्य समाज' और 'मारवाड़ी पुस्कालय' ने लोगों को पढ़ने-लिखने की खूब

प्रेरणा दी। समय-समय पर इन पुस्तकालयों में साहित्यिक गोष्ठियां आयोजित होती रहती थीं।

सन 1952 में 'पलामू जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना की गयी। इस संस्था ने दो बार 1955 और 1965 में जिला सम्मेलन भी कराया। इस संस्था के तत्वाधान में 1961 में बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 28वां अधिवेशन भी हुआ था, जिसकी अध्यक्षता स्व. गोपाल सिंह नेपाली ने की थी। 1959 में 'परिमल साहित्य परिषद' की स्थापना हुई। 1961 में 'आलोक संगम' का उत्थान हुआ। इस संस्था के अन्तर्गत दो पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ- 'आकृतियां उभरती हुई' (कहानी संग्रह) और 'मोर के पंख, मोर के पांव' (कविता संग्रह)। प्रगतिशील लेखक संघ का छठवां सम्मेलन अगस्त 1981 में यहीं हुआ था, जिसमें भीष्म सहानी सहित अनेक लेखक यहां पधारे थे।

इसके बाद काफी लम्बे समय तक इस शहर में साहित्यिक गतिरोध बना रहा। सभी संस्थाएं मृतप्राय थीं। कहीं से कोई साहित्यिक कार्यक्रम का आयोजन नहीं हो रहा था। इस सन्नाटे को वेधने के विचार से 23 जुलाई 1989 को गौरव साहित्यिक मंच की स्थापना हुई। स्थापना के साथ ही यह संस्था हर साल वार्षिक सम्मेलन कराने लगी। प्रत्येक वर्ष साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले तीन साहित्यकारों को सम्मानित किया जाने लगा। तदनंतर साहित्य सम्मान को लेकर संस्था में मतभेद उत्पन्न हुआ और संस्था में बिखराव की स्थिति उपन्न हो गयी।

कादम्बिनी क्लब ने पहली बार अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन का यहां के गांधी स्मृति भवन में आयोजन किया। दिसम्बर 1996 में स्रस्टा नाम की संस्था की स्थापना हुई, मगर यह भी अन्य संस्थाओं की तरह चलते-चलते राह में कहीं खो गयी। सन-2000 में 'झारखंड साहित्य परिषद' और 2015 में 'परिमल' नाम की संस्था का उद्भव हुआ। इस समय ये दोनों संस्थाएं दो आंखें बनकर शहर के साहित्यिक परिवेश को जगमगा रही हैं।

### बरेली के अमृतोत्सव में गीतकार किशन सरोज समादृत

# सोम ठाकुर और रंजीता सिंह का सम्मान

*प्रख्यात गीतकार किशन सरोज के सम्मान की एक झलक।*

बरेली (उ.प्र.)। पत्रकारिता दिवस पर भारतीय पत्रकारिता संस्थान के 33वें वार्षिकोत्सव पर शांति सुरेंद्र स्मृति साहित्य सम्मान समारोह का आयोजन यहां रोटरी भवन में किया गया। समारोह में प्रसिद्ध गीतकार सोम ठाकुर को 18वां सुरेंद्र बहादुर सिन्हा सम्मान एवं 'कविकुंभ' की संपादक रंजीता सिंह को सातवां शांति सिन्हा सम्मान दिया गया।

इस अवसर पर गीतकार किशन सरोज के जीवन के 75 वर्ष पूरे होने पर अमृतोत्सव मनाते हुए उनका हार्दिक सम्मान किया गया। साथ ही उन पर केंद्रित विविध संवाद पत्रिका के विशेष अंक का विमोचन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रो.एनएल शर्मा ने की। सोम ठाकुर, रंजीता सिंह और किशन सरोज ने सम्मानित होने पर भारतीय पत्रकारिता संस्थान के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के साथ ही अपने गीत-गजल भी प्रस्तुत किए। मंचासीन कवि-साहित्यकारों ने मीता गुप्ता की पुस्तक 'यूं ही कोई मिल गया' का विमोचन किया।

कार्यक्रम का संचालन सुरेंद्र बीनू सिन्हा ने किया। इस अवसर पर शायरा सिया सचदेव, साहित्यकार हरिशंकर सक्सेना, अजयराज शर्मा, कवि-पत्रकार जयप्रकाश त्रिपाठी, कौशलेंद्र नाथ शुक्ला, निर्भय सक्सेना, कल्पना सक्सेना, एसके कपूर आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

*'कविकुंभ' संपादक एवं कवयित्री रंजीता सिंह के सम्मान की एक झलक।*

कवि नीलाभ अश्क की कुछ बातें, कुछ अंतरंग सरोकार

# मैं तो नरक में बैठकर खूब शराब पीऊंगा

जिस जगह नीलाभ आखिरी बार गिर कर दोबारा कभी नहीं उठे, उस जमीन से मैं अभी भी बचकर किनारे से जाती हूँ कि कहीं उनपर मेरा पाँव न पड़ जाए। वह आज भी चैन से आँखें मूंदे वहीं लेटे दिखाई देते हैं। अन्तिम समय की उनके चेहरे की कान्ति ने मुझे वास्तव में बेहद झकझोरा भी, और एक आध्यात्मिक इत्मीनान भी दिया कि वे सद्गति को प्राप्त हुए वरना उनका कहा मुझ धर्मभीरु हिन्दू पत्नी को भयभीत करता था कि ''मैं बड़ा कुकर्मी हूँ, तुम नई मिली हो, इसलिये मेरे बारे में ज्यादा नहीं जानती हो, मैंने तुम्हारे प्रति बड़े अपराध किए हैं। देखना मैं तो नरक में बैठकर खूब शराब पीऊंगा।''

नीलाभ अश्क जैसी शख़्सियत पर लिखना एक जटिल तजुर्बा है, क्योंकि उनके विषय में सोचते हुए ही मन-मस्तिष्क में उनकी एक सामान्य से पति, मित्र, वक्ता, विचारक या कोई आम शख़्स न होकर बड़ी भारी फ़ैली पसरी वजनदार छवि उभरकर आती है, जिसका फ़लक पूरी पृथ्वी है। लेकिन फ़िर भी वे स्वयं बेहद सहज सरल व्यक्ति रहे हैं। वह ख़ुद महज एक शख़्स न होकर, जन्मजात

– भूमिका द्विवेदी अश्क

अभिजात्य शख्सियत रहे हैं। जटिल अभिजात्य वर्ग का होने के साथ-साथ अतिशय ज़मीनी। उनसे सादा और उनसे दुरूह व्यक्ति का इस धरातल पर मिलना कठिन है।

वह जब पहली बार मिले मुझसे, तो मेरी लिखी एक कहानी ('काला गुलाब' 19 मई 2013, जनसत्ता रविवासरीय में प्रकाशित) पढ़कर, थोड़ा सा होमवर्क किये हुए मिले थे। आवाज़ में एक रुमानी खनक और कसरती देह में एक चपलता थी, ये बातें उनकी रँगीन बानगी बयान कर रही थी लेकिन रह-रहकर आँखों में गहरी उदासी तैरती दिखती थी क्योंकि वे कई वर्षों से पत्नी के देहान्त के बाद अकेला निर्जन जीवन जी रहे थे।

उनके अल्फ़ाज़ बहोत तराशे हुए और ज़हीन थे, जहाँ उनके उस अकेलेपन की तक़लीफ स्पष्ट थी, जिससे मैं ख़ुद व्यक्तिगत रूप से परिचित थी। मैं अपने शहर इलाहाबाद से बाहर, परिवार से दूर, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की छात्रा थी। नीलाभ जी का प्रणय निवेदन और विवाह प्रस्ताव भी उनके व्यक्तित्व की तरह ही अनोखा था-

''भूमिका जी'', (तब नीलाभ मुझे आप सम्बोधित करते थे) ''मैं एक ग़रीब, अकेला, उदास आदमी और बेशक एक बुजुर्ग कवि हूँ। कई सारे कर्ज़े हैं मुझ पर, जिन्हें मुझे चुकाना है। मेरी एक बीवी थी, जिसका 2010 में देहांत हो चुका है, मेरे दो बेटे हैं, जिन्होंने बीसियों साल से मुझसे बात तक नहीं की है। क्या तिस पर भी मैं आपके सामने विवाह का प्रस्ताव रखने की हिम्मत कर सकता हूँ। ये जानते हुए भी कि आपके सामने पूरा आसमान, पूरी दुनिया और लाखों चाहने वाले बिखरे पड़े हैं, जब मैंने आपका लिखा पढ़ा, तभी मुझे लगा था, कि आप एक संजीदा दिमाग और समृद्ध लेखनी की धनी हैं, इसीलिए ये बातें आपसे कह रहा हूँ। मुझे वास्तव में आपकी बेहद सख़्त ज़रूरत है। मुझे ठुकराइए मत, प्लीज़। हालाँकि मेरे इख़्तियार में सिवाय अनुरोध के कुछ नहीं...।'

मैं चुपचाप उन्हें देखे जा रही थी, जवाब समझ नहीं आ रहा था, कोई पहली ही मुलाकात में कैसे इतना बहादुर बन सकता है। न 'हाँ' कहते बन रहा था, न 'ना'। मेरे पास उनके प्रस्ताव को ठुकराने की सबसे बड़ी वजह उनकी उम्र थी, लेकिन हाँ कहने की ठोस, ख़ूबसूरत और दिलफरेब वजहें भी मौजूद थीं। उनका अपरिमित ज्ञान, उनका जबरदस्त और सुन्दर प्रभावशाली व्यक्तित्व, उनके गालों फर मुस्कुराहट के साथ पड़ते गड्ढे, उनकी मनमोहक बातें, उनका मनाना, रिझाना, बहलाना, इतराना सबकुछ संयुक्त रूप से था। एक कड़वा यथार्थ और भी था, जो नीलाभ के प्रस्ताव के लिए मेरी सहमति का कारक बन रहा था। मेरा कैबिनेट मन्त्री के महान घमंडी बदज़बान बददिमाग़ भतीजे की मंगेतर होना। जो बात-बात पर अपने रुतबे, अपनी ऊँची औक़ात की व्याख्या करना नहीं भूलता था, और न जाने क्यूँ उस परिवार को विवाह की भीषण हड़बड़ी भी थी।

मैं ख़ुद मायके से बड़े भारी ख़ानदान से आती हूँ लेकिन कहाँ नीलाभ जी जैसे प्रचण्ड, प्रकाण्ड विद्वान की विनम्रता से लबरेज़ मीठी सरल वाणी, कहाँ संसद और मन्त्रालय पर बोझ सरीखा, आडम्बरों से गुँथा हुआ, बड़ी बड़ी प्रापर्टी को सिर पर मुकुट जैसा सजाये हुए त्रिवेदी परिवार का इकलौता मनहूस चिराग और अहम में डूबी उसकी अतिशय घमंडी काली ज़बान। मेरे पास अन्य विकल्प भी थे, जिनमें शैक्षिक विकल्पों सहित जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय से सहपाठी रहे मेरे फ्रेंच मित्र गेब्रीएल और उसकी स्नेहिल माँ का आत्मीय वैवाहिक निमंत्रण भी विचाराधीन था। लेकिन गेब्रीएल को गो-माँस नोच नोचकर खाते देख कर भी मेरा जी भिनक जाता था, भले ही वो एक शानदार चित्रकार था लेकिन मैं शुद्ध शाकाहारी सुपरिचित ब्राह्मण परिवार की पैदाइश भी थी।

इस तरह उस विराट लेकिन संतुलित मधुर व्यक्तित्व की उस पहली मुलाकात ने मुझे बड़े प्रेम से श्रीमती नीलाभ अश्क बना दिया। हमने बड़ी ही सादगी से, नीलाभ जी के कुछ अभिन्न मित्रों की मौजूदगी में विवाह किया, जिसे बाद में कोर्ट में संस्तुति भी नीलाभ जी की जिद के कारण ही दिलाई गई। उम्र के बड़े फासले के चलते और नीलाभ जी जैसी कद्दावर शख़्सियत के दूसरे विवाह की वजह से इस शादी को मीडिया ने ख़ासा चर्चित बना दिया। बेशक उस बड़े बाल, चमकदार चेहरे, घनी दाढ़ीमूँछ वाले और लहीम सहीम देहयष्टि के, कई महत्वपूर्ण भाषा-साहित्य और अनेक विधाओं के पारंगत बाबा में कोई जादू ज़रूर था, जिसके मेरी ज़िन्दगी में दमदार दख़ल के बाद मुझे कोई भी और देशी-विदेशी रिझा नहीं पाया। मीडिया हम दोनों पर बराबर नज़र रखता रहा। यहाँ तक कि मियां-बीवी के पहनावे, उनके पब्लिक अपीयरेंस और आपसी मामूली मतभेद को भी मीडिया कवरेज देता रहा।

हद तो तब हुई जब नीलाभ जी अपनी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की संपादक की नौकरी के चलते, ऑफिस के नजदीक फ्लैट में रहने गये, और ख़बर ये छनकर आई कि हमारे दाम्पत्य जीवन में कोई खटास आ गई है। जबकि सच ये था, कि मैं बराबर उस मकान में आती जाती रही, और उस दौरान एक दिन भी ऐसा नहीं गुज़रा कि हमारी फोन पर चार से छह घण्टे आपस में बात न हुई हो, और अन्ततः एक दिन साथ ही रहने भी लगी।

इत्तिफ़ाक़ से उस फ्लैट का मकान नंबर भी पाँच था। उस फ्लैट का किराया हमारे बजट से थोड़ा ज़्यादा था, लेकिन हम दोनों को ही प्रवेश करते ही वो फैला पसरा विशालकाय फ्लैट समान रूप से भा गया था और हम दोनों ने 'कुछ खर्चे से कटौती करने' का तय करते हुए अग्रिम किराया मकान मालिक को सौंप कर एग्रीमेण्ट बनाने को कह दिया। नीलाभ जी का भोर में उठना, रविशंकर के सितार या जैज़ का रिकॉर्ड सुनना, फिर कश्मीरी कहवा बनाकर, मेरी प्रिय ग़ुलाम साहब की ग़ज़ल प्ले कर, मेरा माथा सहलाते हुये, रोज़ाना, बिना नागा मुझे जगाना, ठीक नौ बजे चाय पीना, भँरवा शिमला मिर्च, आलू पराठा, तड़के वाली पंचाबी दाल बनाना, मेरे माथे की शिकन पर शोध करना, मेरा लिखा हुआ तन्मयता से पढ़ना, उस पर चर्चा करना, फूलों सा मुझे सहेजना, सवाँरना, दुलारना कभी न भूलने वाली बातें हैं। और हाथ पकड़ते हुए रो-रोकर कहना मुझे अस्पताल नहीं जाना, नहीं जाना, बच्चों जैसे चीखना चिल्लाना, दवा नहीं खाऊँगा, नहीं खाऊँगा ऐसी मर्मान्तक और रूह कँपाने वाली स्मृतियाँ हैं, जिन्हें जेहन से धुँधला भी

करना असंभव है।

आख़िरी वक़्त का वो दारुण दौर जब नीलाभ पैसे पैसे के लिए परेशान थे। जब मोहल्ले के हर बनिया के बहीखाते में इनका लम्बा चौड़ा उधार दर्ज होने लगा, जब उनकी जर्जर सेहत देखकर कई दुकानदारों ने उन्हें उधार देने से मना कर दिया, जब छोटे छोटे कामगर लोग उनसे तकादा करने लगे, तब एक दिन बीड़ी वाले से नीलाभ महज 500 रुपए उधार लेकर खुश-खुश आए और बोले - इतनें में कुछ दवाएं तो आ ही जाएंगी।

मैं ये सुनकर तड़पकर रोने लगी थी, मैंने अपनी माँ के पहनाए अपने दोनों कंगन उतार कर उनके हथेली पर रख दिये और समझाने लगी - क्यों दर-दर भीख माँग रहे हैं। ये जेवर ऐसे आड़े वक्त के लिए ही तो होते हैं ना। उन्होंने मेरे कंगन वापस मुझे पहना दिये, और बीमारी के बावजूद ऊँची आवाज़ में बोले- इतनी छोटी लड़की ब्याह कर इस दिन के लिए तो नहीं लाया था। अपने तो सारे गँवा ही चुका हूँ, अब तुम्हारे पहने हुये ज़ेवर बेचने से बेहतर है कि मैं हमेशा के लिए आँखें मूँद लूँ। आगे ऐसे कड़वे विकल्प मेरे सामने मत झाड़ना।

ऐसा नहीं था कि नीलाभ कोई आम गरीब लेखक कवि रहे हों, उनकी व्यावसायिक समृद्धि और रईसी के चरचे लोगों की ज़ुबान पर सालों साल गूंजते रह थे लेकिन वृद्धावस्था तक आते-आते उन्होंने न केवल व्यवसाय में बल्कि घरेलू रिश्तों में भी तमाम तरह से धोखे खाये। मेरे उनके विवाह से पूर्व ही उनके पुराने नौकरों ने उन्हें जी भर के लूटा। उनके सहकर्मी प्रकाशकों ने भी उन्हें जमकर चूना लगाया। उनकी ज़िदों, उनकी अकड़, उनके अटल इरादों का कोई सानी नहीं था, इस कारण वो अपनी ही कमाई से हाथ धोते रहे, और अपना ही बकाया धन लेने किसी के दरवाज़े नहीं गये, और अन्त समय वो खाली हाथ रहे।

उनकी तमाम चीजों और दौलत पर आज भी लोगों का अवैध कब्जा है। उनकी खुद्दारी का कोई तोड़ नहीं था, इसलिए कमती में भी गुजर करना मुझे सम्मान का अहसास देता था। नीलाभ जी, अपनी बीमारी के दौरान कई मर्तबा घर के हर कोनों पर बेहोश होकर गिरते रहे। मोहल्ले के एक-एक शख़्स ने मेरा साथ देते हुए उन्हें उठाया, बिस्तर तक पँहुचाया, हर क़दम उन्हें सँभाला। ऐसे एक-एक आँटी, भाभी, भइया, अंकल की मैं सदा ऋणी रहूँगी।

वॉशबेसिन के नीचे जिस जगह नीलाभ आख़िरी बार गिर कर दोबारा कभी नहीं उठे, उस ज़मीन से मैं अभी भी बचकर किनारे से जाती हूँ कि कहीं उनपर मेरा पाँव न पड़ जाए। वो आज भी चैन से आँखें मूंदे वहीं लेटे दिखाई देते हैं। उस मनहूस 23 जुलाई की सुबह मैं डॉक्टर और नर्सों से उसी जगह बुरी तरह झगड़ रही थी - 'आप इन्हें होश में लाइए। आप का दिमाग़ ख़राब हो गया है, क्या बकवास कर रहे हैं आप लोग। ये तो रोज़ बेहोश हो रहे हैं। वही इंजेक्शन लगाइए, वही दवा दीजिए, जिससे आप इनके होश वापस लाते हैं। ये इतना लम्बा चौड़ा दवा का परचा, ये टेस्ट, ये नौटंकियाँ, ये ड्रामे आपने 'क्लीनिकली डेड' लिखने के लिए करवाये थे। आप और आप का स्टॉफ इस दिन के लिए नचा रहा था मुझे। ये आदमी मर नहीं सकता। मैं कुछ नहीं जानती, आप इन्हें होश मे लाइए बस।'

निश्चित रूप से ये उनका भरपूर परोपकार, स्वाभिमान और आत्मा से किया हुआ सद्कार्य ही था, जो आख़िरी वक़्त उनके चेहरे पर एक अलौकिक तृप्ति और असीम शान्ति दिखा रहा था। जबकि बीते महीनों की बीमारी से उनका चेहरा और पूरा शरीर बहुत मुरझाया गया था। निगम बोधि घाट पर उनकी मृत देह पर उड़ती हुईं मक्खियों को लगातार मैं अपने आँचल से उड़ाती रही, और किसी दिव्य महन्त जैसे दमकते चेहरे को देखते हुए सोचती रही कि अभी ये आँखें खोल देंगे और शायद कि बरस ही पड़ेंगे कि 'महारानी जी, ये तुम मुझे कहाँ ले आई हो, चलो, जल्दी घर चलें, वरना ट्रैफिक बढ़ जाएगा।'

अन्तिम समय की उनके चेहरे की उस दैवीय कान्ति ने मुझे वास्तव में बेहद झकझोरा भी, और एक आध्यात्मिक इत्मीनान भी दिया कि वे सद्गति को प्राप्त हुए वरना उनका कहा मुझ धर्मभीरु हिन्दू पत्नी को भयभीत करता था कि 'मैं बड़ा कुकर्मी हूँ, तुम नई मिली हो, इसलिये मेरे बारे में ज़्यादा नहीं जानती हो, मैंने तुम्हारे प्रति बड़े अपराध किए हैं। देखना मैं तो नरक में बैठकर खूब शराब पीऊंगा।'

हम दोनों बहुत कुछ एक जैसी नियतियों के साझेदार रहे। जितने बदनसीब वे, कमोबेश उतनी ही मैं। जितना भाग्यशाली उनका जीवन, कुछ मायनों में वैसा ही मेरा। वह अपनी ओर से जिसके लिए हमेशा सबसे अच्छा करना चाहते रहे, लेकिन कई बार वो उनका अच्छा चाहना वांछित व्यक्ति तक पँहुचा ही नहीं। जैसे मेरे लिए वो बहुत कुछ सुंदर और सकारात्मक करना चाह रहे थे, लेकिन उनकी बद से बदतर होती सेहत और इसी वजह से डगमगाती अर्थव्यवस्था ने उनका ख्वाब पूरा नहीं होने दिया। बेशक ये उस वांछित व्यक्ति या खुद मेरी ही मन्द तक़दीर कही जाएगी। उनकी एक ख़ास बात जो उन्हें कई सारे भीषण ज्ञानियों के बीच ला खड़ा करती है, वो है उनका क़ीमती पत्थरों का विशद, विस्तृत और सूक्ष्म ज्ञान।

ग़ज़ब हैरान करने वाली बात तो ये रही कि जौहरी ख़ुद नगीनों और रत्नों के बारे में नीलाभ से जानकारी और सलाह माँगा करते थे। मेरी हैरानगी देख कर कहते थे, ''मेरी प्यारी, (उनका मेरे लिए सम्बोधन ''मेरी प्यारी'' या ''मेरी जान'' या ''कोहेनूर हीरा'' या फ़िर ''महारानी जी'' रहा), सबसे क़ीमती हीरा मैंने खोज लिया है, ये दीगर बात है कि मेरा कोहेनूर मुझे उम्र के आखिरी पड़ाव में मिला.. लेकिन वो मेरी आँखों का तारा है, मेरे दिल का सुक़ून है... कोई बात नही कि उम्र ज़रा बढ़ गई है, लेकिन उसे सहेजने का दमखम अभी बाक़ी है मुझमें.. लेकिन ये अफ़सोस मैं अपने साथ ले जाऊंगा कि मैं तुम्हारे लिये कुछ कर ना सका.. पूरी दुनिया में ना जाने कितने लोगों को मैं कितना कुछ दे सका हूं, लेकिन अपनी सबसे प्यारी रूहानी संगिनी के लिये कुछ न कर सका।''

उनके चेहरे की एक एक झुर्री अनगिनत तजुर्बे और तक़लीफ़ों का आईना थी। उनकी कुल जमा बहत्तर बरस की ज़िन्दगी में उनके अपने खुद के बयालीस पते रहे, जिसमें लंदन का साढ़े चार बरस का निवास भी उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी जिन्दगी से जुड़े एक एक शख़्स को संवारा और भली तरह से बसा दिया। मेरा उनका महज तीन सालों का भीषण साथ रहा, और इन तीन सालों में उन्होंने तीन सौ मर्तबा एक ही बात कही, ''तुम मुझे मेरी जवानी में क्यों नहीं मिल गईं, मैं तभी से सँभला और सुधरा इन्सान होता।'' मैं भी हमेशा एक ही ज़वाब देती, ''भई आपकी जवानी में जब मैं पैदा ही नहीं हुई थी, तो मिलती कहाँ से... और सुधार की कोई उम्र नहीं होती, अगर आप चाहें तो अभी भी सुधर सकते हैं।'' न मैं उन्हें पच्चीस बरस का बना सकती थी, न खुद को सत्तर का।

(संपर्क - 9999740265 / 9910172903)

# वह मस्त, बिंदास और आवारा जीवन जीते थे!

नीलाभ ने जीवन में बेशक तमाम अपराध किए, लेकिन सरेआम स्वीकारा, खुलेआम माफी माँगी। यूँ तो नीलाभ का मोस्ट फेवरेट अड्डा इलाहाबाद और इलाहाबाद में भी ''नीलाभ प्रकाशन'' का दफ्तर रहा लेकिन दिल्ली की सड़कों पर भी फेरा दर फेरा लगाना हम दोनों का उन्मुक्त चस्का था। वो हर जगह जाकर उस खास जगह का पूरा अतीत सुना देते थे। मसलन, उन्होंने बताया कि पूरा कनाट प्लेस उनके सामने बसाया गया है। उनकी इस तरह की बात सुनकर मैं हमेशा कह दिया करती थी, ''मैं ठीक ही तो कहती हूँ, आप सचमुच अंग्रेजों के जमाने के जेलर ही हैं।'' इस पर पहले तो वो जोर का ठहाका लगाते थे और फिर कार की स्पीड अचानक बहुत बढ़ा देते थे।

वह मस्त, बिंदास और आवारा जीवन जीते थे। कोई रोक-टोक उन्हें कभी पसंद नहीं थी, न खुद के लिए, न किसी भी और के लिए। यहाँ तक कि मेरे कैसे भी परिधान, परिवेश और आदतों पर उन्होंने ताउम्र एक सवाल तक नहीं किया, कभी कोई रोक नहीं लगाई। फ्रेंच सोहबत से प्रभावित मेरे कुछ 'हॉल्टर नेक' और 'ऑफ शोल्डर' परिधान हिंदी साहित्य जगत में चर्चा, विवाद और आलोचना का विषय भी बने, लेकिन नीलाभ को रत्ती भर भी फ़र्क नहीं पड़ा। उलटा उन्होंने ये सभी आलोचनाएं दरकिनार करते हुये, उस जैसे मेरे कई नये कपड़े भी बनवा दिये। मैं वास्तव में अवाक रह गई, उनका ये बिंदास रवैया देखकर।

दरअसल नीलाभ शुद्ध रूप से हिंदी वाले थे ही नहीं। क़िताबों और शब्दकोशों में हर वक़्त डूबे हुये वो एक बहुआयामी, बहुप्रतिभाशाली, धुरंधर पढ़ाकू, अव्वल ज़िद्दी, बहुत ज़्यादा खुद्दार और बड़े ही बातूनी आदमी थे, जिनके साथ वक़्त का गुज़रना पता ही नहीं चलता था। वे जितने धुरंधर ज्ञाता क्लासिक विषयों के थे, उतने ही मास्टर आधुनिक तकनीकी के थे। उनके व्यक्तित्व के ये सारे विरले संगम बड़ी मुश्किल से देखने को मिलतेहैं। उन हर मिनट के साथी के लिए ''था'' लिखना दुनिया का एक बेहद तकलीफदेह तजुर्बा है।

वह मेरी बाँह मजबूती से थाम कर कहते थे, जिस पर मैं ताउम्र अमल करूँगी- ''मैं रहूँ न रहूँ, लेकिन मेरी कही बातें याद रखना। ये तय बात है, मैं तुमसे पहले दुनिया को विदा कहूँगा लेकिन अकेले रोकर मत जीना, इस दुनिया से लड़कर जीना, मेरी भूमिका रोएगी नहीं। वो लिखेगी, कहानी लिखेगी, कविता लिखेगी, खुशियाँ लिखेगी और अश्क लिखेगी। मेरी भूमिका की पहचान उसकी कहानियाँ हैं, उसकी लेखनी है, मैं नहीं हूँ। तुम भूल तो नहीं गई हो, मेरा तुम्हारा परिचय ही तुम्हारी कहानी से हुआ है। भूमिका लिखा करो, प्लीज। भूमिका बहुत लिखेगी।''

## मेरे क़लम से/प्यासा अंजुम

# अरमान जो भी झोली में डाले बिखर गए

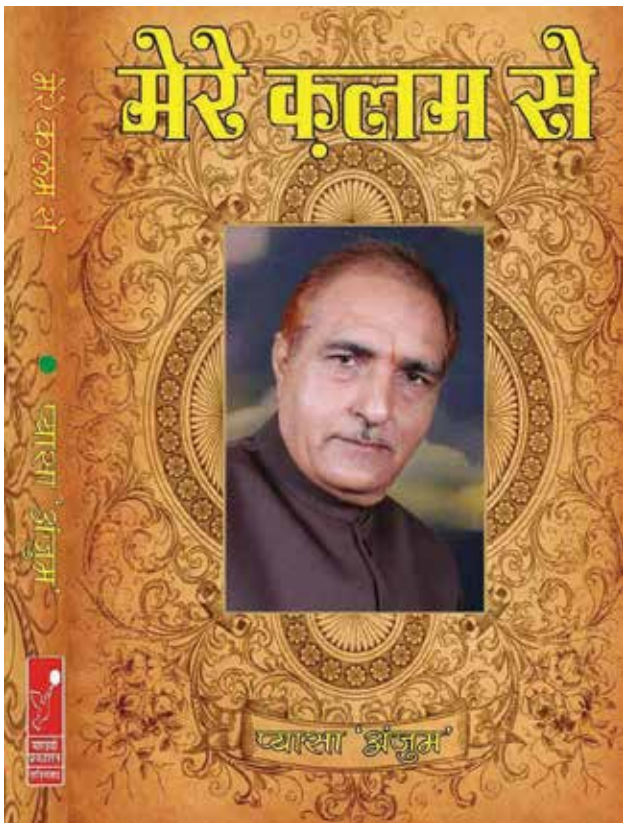


हाल ही में जम्मू-कश्मीर के मशहूर शायर 'प्यासा' अंजुम के गजल संग्रह 'मेरे कलम से' का लोकार्पण दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान में आयोजित हुआ, जिसमें देश भर से आये कवि-साहित्यकारों को सम्मानित भी किया गया। शायर अंजुम ने अपनी पुस्तक के अनावरित होने के इस मौके पर कहा कि माण्डवी प्रकाशन ने उनके चालीस सालों की तपस्या और पुस्तक प्रकाशन का सपना पूरा किया है।

प्यासा अंजुम का पहला नाम विजय उप्पल है। आटो मोबाइल इंजियरिंग में प्राइवेट और सरकारी नौकरी में जूनियर इंजीनियर के पद से रिटायर्ड होने के बाद से अदबी सफ़र ज़ारी है। वह मुख़तिल्फ ज़ुबानों में उर्दू, हिन्दी, पंजाबी, डोगरी आदि में शायरी करते हैं। उन्हें शायरी की हर सिन्फ़ में तबाआज़माई, ग़ज़ल-गीत और भजन में ख़ास मुक़ाम मिला है। उनके अदबी मुक़ाम फिल्म, रेडिओ, दूरदर्शन, मीडिया के साथ एकेडमिक एवं अदबी संस्थाएं रही हैं।

प्यासा अंजुम के ताजा संकलन 'मेरे कलम से' में उन गजलों को शामिल किया गया है, जो बेहद मकबूल हुई हैं। उनका स्वर कथ्य के धरातल पर जनजीवन की समतल भूमि की ओर मुखर होता है। मनु भारद्वाज मनु लिखते हैं- आज के बदलते हालात, सामाजिक एवं समाज से जुड़े व्यक्तियों के व्यक्तिगत अहसासात और मानवीय मूल्यों का बखूबी चिंतन और चित्रण करता है यह संकलन।

इस संकलन की एक-एक गजल मानो हजार-हजार मायने लेकर चलती है-

*हर सिम्त किसने नूर उछाले बिखर गए।*
*छंटते ही शब सियाही उजाले बिखर गए।*
*यह जख़्म इतने हद से बढ़े, कुछ न कर सके,*
*जितने भी दर्द हमने संभाले बिखर गए।*
*दिल को सुक़ून था मिला जब आंख बंद थी,*
*खुलते ही आंख ख़्वाब जो पाले बिखर गए।*
*जो था नसीब में लिखा 'अंजुम' मिला वही,*
*अरमान जो भी झोली में डाले बिखर गए।*

मुल्क और अपने सूबे के ताजा हालात को भी वह अपने बारीक लफ्जों से फिसलने नहीं देते हैं। इन मुहावरेदार पंक्तियों में वक्त की नजाकत कुछ इस तरह बयां होती है-

*किस बात पे अभी भी है सूई अड़ी हुई।*
*फिर से सुना रहे हो कहानी सुनी हुई।*
*खामोश भीढ़ बह रही लावे की शक़्ल में,*
*हर इक नज़र में है लगे नफ़रत भरी हुई।*

प्यासा अंजुम के शब्दों में देश की गरीब और मेहनतकश आबादी का भी दुख-दर्द सहज-सहज शब्दों में कुछ इस तरह छलक उठता है-

*हमसे ख़ुशी है कोसों दूर।*
*हमको कहते हैं मजदूर।।*
*रूखी सूखी खा लेते हैं।*
*वक़्त के हाथों हैं मजबूर।।*

वक्त की ओर इशारा करते हुए वह अपनी इन चार पंक्तियों में वह बहुत कुछ कह जाते हैं-

*आज तुम जो भी लिखो कल को पुराना होगा।*
*अब हक़ीक़त जो लगे कल वो फ़साना होगा।*
*आज की अब ही करोगे जो वही तो होगी,*
*कल पे छोड़ोगे तो गुज़रा ही ज़माना होगा।*

*(संपर्क - 9419101315 / 09797621315)*

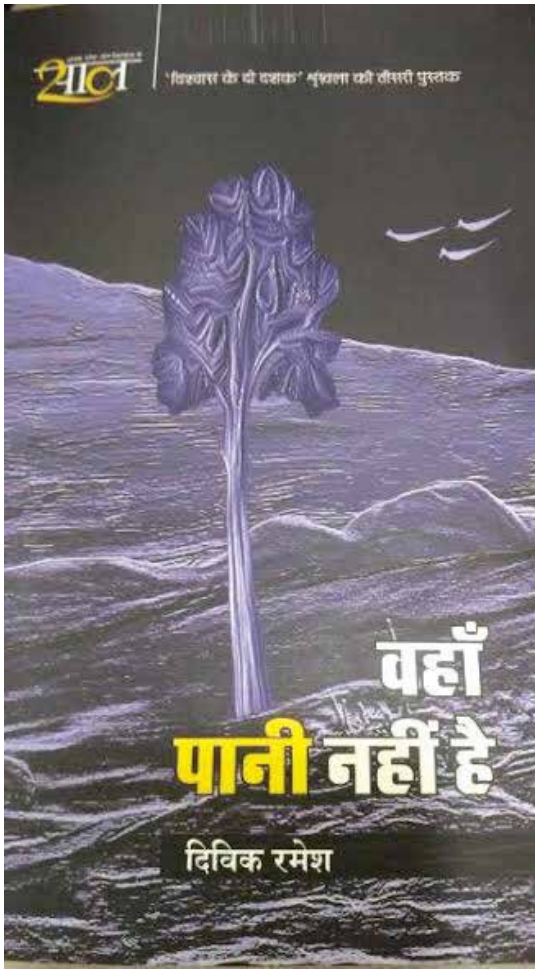


वहाँ पानी नहीं है/दिविक रमेश

# सदी के सत्य को सामने लाने वाली कविताएँ

**मनोज कुमार झा**

दिविक रमेश के कविता-संग्रह, 'वहाँ पानी नहीं है' के प्रकाशन से पूर्व इनके नौ कविता-संग्रह आ चुके हैं। 'गेहूँ घर आया है' इनकी चुनी हुई कविताओं का प्रतिनिधि संग्रह है। गत वर्ष 'माँ गाँव में है' संग्रह आया और बहुचर्चित हुआ। 'फेदर' नाम से अंग्रेजी में अनूदित इनकी कविताओं का संकलन भी आ चुका है। 'खण्ड-खण्ड अग्नि' काव्य-नाटक है। इसके अलावा 'अष्टावक्र' नाम से मराठी में अनूदित कविताएँ आई हैं। कोरियाई भाषा में भी इनकी अनूदित कविताओं का संकलन आ चुका है। दिविक रमेश ने बाल साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। बाल कविताओं के इनके कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। साथ ही, आलोचना के क्षेत्र में भी काम किया है।

20वीं शताब्दी के आठवें दशक में अपने पहले ही कविता संग्रह 'रास्ते के बीच' से चर्चित हो जाने वाले आज के दिविक रमेश बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उनका जीवन निरंतर संघर्षमय रहा है। प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने दिविक रमेश को वृहत्तर सरोकार का कवि बताते हुए लिखा है कि लेखन के क्षेत्र में वे अभी भी एक युवा की तरह ही सक्रिय हैं। नामवर सिंह ने इन्हें सजग और खबरदार करने वाले कवियों में से एक बताया है। इनकी कविताओं के बारे में शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है कि ये उस गहरी वास्तविक चिंता को व्यक्त करती हैं, जिसका संबंध मानव-मात्र के जीने-मरने से है। उनमें संस्कृति और राजनीति के ठोस आधारों को स्पष्ट करने की मांग होती है।

कविता संग्रह 'वहाँ पानी नहीं है' को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि इसमें शामिल कविताएँ कवि की दशकों की काव्य-यात्रा का एक नया ही पड़ाव है, जहाँ हिन्दी कविता अंतर्वस्तु और रूप-विधान, दोनों ही दृष्टि से लोक में समाहित हो गई है। संग्रह में कुल चौंसठ कविताएँ शामिल की गई हैं। हर कविता अपने कथ्य, संवेदना और शिल्प में भिन्न है। इन कविताओं को पढ़ते हुए लगता है कि कवि का लोगों से, पूरे परिवेश और प्रकृति से बहुत ही गहरा और आत्मीय रिश्ता है। कवि अपनी जानी-पहचानी दुनिया में विचरता है और संवाद करता है, वह संवेदना के अति सूक्ष्म स्तर पर अपना सरोकार बनाता है। कवि की दुनिया बहुत ही विस्तृत है और न जाने कितने लोगों से जो मनुष्य हैं और मनुष्य नहीं भी हैं, उसका संलाप चलता है। यह संलाप कई स्तरों पर चलता है, कई बार इतने सूक्ष्म स्तर पर कि उसे पकड़ पाना एकबारगी आसान नहीं होता। इसके लिए कविताओं को बार-बार पढ़ना पड़ता है और तब जाकर उसकी अर्थछवियाँ खुलती हैं, जब एक बार अर्थछवि खुलती है तो पाठक फिर से कविता के आकर्षण में बंधा उसे पढ़ने को मजबूर हो उठता है और नई अर्थछवियों और सन्दर्भों के साथ उसके सामने एक दुनिया सामने आती है। तब उसे लगता है कि यह जो उसकी परिचित दुनिया है, उसे तो उसने इस तरह नहीं देखा था। यही इस संग्रह में शामिल कविताओं की खासियत है, जो पहले की कविताओं से इस रूप में भिन्न हैं कि इसमें काव्य-संवेदना और कला का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है। 'वहाँ पानी नहीं है' हिन्दी कविता की एक नई उपलब्धि है। निश्चय ही यह युग सत्य को सामने लाने वाली कविता है। इसका पहला और अंतिम अंश उद्धृत करना आवश्यक लग रहा है।

*''वहाँ पानी नहीं है।''*
*सुन कर या पढ़ कर*
*क्यों नहीं उठता सवाल*
*कि वहाँ पानी क्यों नहीं है।*
*''वहाँ पानी नहीं है।''*
*सुन कर या पढ़ कर*
*अगर कोई हँस रहा है*
*तो वह है इक्कीसवीं सदी।*

(संपर्क - 9301664223 / 7509664223)

धूप के आलम/अफरोज आलम

# कुछ इस तरह आलम को महसूस करना

उर्दू शायरी का एक जाना-पहचाना नाम है- अफरोज आलम। बिहार की पैदाइश और कुवैत में रिहाइश अपने रोजगार सिलसिले में। उर्दू अदब में कई किताबें छपने के बाद एक बार फिर से नई गजलों, नज्मों के साथ 'धूप के आलम' का नया संस्करण आया है। देवनागरी लिपि यानी हिंदी में उर्दू शायरी का लुत्फ लेना, हिंदी भाषी पाठकों के लिए एक शानदार अनुभव होगा। इसका प्रकाशन दिल्ली से हुआ है, जिसमें 85 गजलें और 84 नज्में शामिल हैं।

गजल की नजाकत, वो तेवर, वो नफासत, वो अंदाज, वो बयां, जो दिल के तारों में तरंग पैदा कर दें, अहसास को जगाकर झंकार पैदा कर दें और उर्दू जुबान की मिठास से रू-ब-रू करा दें। जब ऐसी गजल के शेर पढ़ते-पढ़ते हमारे अंदर घुलने-मिलने लगें तो समझिए, ये हमारी-आपकी दास्तां है। शेर, जो जिंदगी के तमाम खट्टे-मीठे तजुर्बों का, अनकहे खूबसूरत अहसासों का अक्स है, जिनमें इंसानी फितरत अपने अलग-अलग रूपों में नुमाया होती है।

अफरोज आलम की शायरी में इश्क-ओ-मुहब्बत की अदायगी ही नहीं, दुनियावी फिक्रोफन को भी बड़ी संजीदगी से तवज्जो दी गई है, जो शायर के सोच को बड़े फलक पर लाकर खड़ा करती है, मसलन-

*जगा जुनूं को जरा नक्श ए मुकद्दर खींच।*
*नई सदी को नई करबला से बाहर खींच।*
*मैं जहनी तौर पर आवारा हुआ जाता हूं,*
*मेरे शऊर मुझे अपनी हद के अंदर खींच।*
*और जब खुद आत्मविश्वास की बात हो तो -*
*मैं अपने शौक से जादू नगर में ठहरा हूं।*
*मैं इस गिरफ्त से बाहर निकल भी सकता हूं।*

कुछ वाकिये इंसान उम्र के किसी भी मकाम पर न भूलता है, न उसकी कसक कम होती है बल्कि वो हमेशा के लिए दिलओदिमाग पर चस्पां हो जाते हैं। 'कसक' इसी तरह की नज्म है। 'ग्लोबलाइजेशन' में दुनिया के आज और कल की फिक्र है। एक चेतावनी है कि अब संभल जा ताकि आने वाले वक्त में हमारी आदतें और हरकतें कहीं हमें शर्मसार न कर दें।

*कोई परिंदा तोड़ के पिंजरा दूर पहुंचने वाला है,*
*शायद किसी सैयादे पर एक दुनिया बसने वाली है।*

## लेखक से ज्यादा पाठक-केंद्रित हो 'कविकुंभ' : डॉ. जीवन सिंह

अलवर (राजस्थान) से प्रसिद्ध आलोचक डॉ. जीवन सिंह लिखते हैं - 'कविकुंभ एक ऐसी पत्रिका है, जिसको एक स्तरीय साहित्यिक घरेलू पत्रिका बनाने की योजना है, जो हिन्दी पाठकों को कम कीमत में सहज सुलभ हो। इसके केंद्र मे वह साहित्य-संस्कृति होनी चाहिए, जो लोकप्रियता के साथ जीवन-मूल्यों को लेकर चले। यह पत्रिका लेखक केंद्रित होने से ज्यादा पाठक केंद्रित हो तो उपयुक्त रहेगा, जिसमें साहित्य-संस्कृति पर खुली और दृष्टि केंद्रित चर्चा हो। आज साहित्य की हालत यह है कि जो स्तरीय है, वह लोकप्रियता की जद से बाहर है और जो लोकप्रिय है, उसका स्तर बहुत नीचा है, जो पाठक का मनोरंजन तो अवश्य करता है लेकिन उसे पहुँचाता कहीं नहीं। मैं इस सम्पादकीय नजरिए का स्वागत करता हूँ। और कविकुंभ के लिए शुभकामना प्रेषित करता हूँ।'

## पत्रिका लीक से हटकर, नजर कविता के व्यावहारिक संकट पर : राजेंद्र राज

लखीसराय (बिहार) से राजेंद्र राज लिखते हैं - 'यह संयोग था कि पटना के रेणु भवन में राजभाषा विभाग, बिहार सरकार के साहित्यिक आयोजन के दौरान 'कविकुंभ' पत्रिका हस्तगत हो गई। देश के बड़े कवियों की इतनी पठनीय सामग्री एक साथ। कविताएं, गजल, संस्मरण, साक्षात्कार आदि भी। पत्रिका लीक से हट कर मालूम पड़ती है। साहित्य में आज गिरते मूल्यों के बीच इस पत्रिका में कविता-साहित्य के व्यावहारिक संकट से परिचित कराना सराहनीय है। इसमें कई जरूरी समकालीन सवाल उठाये गये हैं। शब्द के महत्व क्यों खोते जा रहे हैं? ऐसा नहीं है। शब्द जो ब्रह्म है और उसके उपासक अपनी साधना में लीन हैं। हिन्दी और उर्दू के लेखन और पठनीयता के उठते सवालों को रेखांकित करना तथा साक्षात्कार में संस्मरणों व समकालीन विद्रूपताओं की ओर ध्यान दिलाना प्रशंसनीय है। वैसे मैं गांव-कसबे का रहने वाला हूं और 'कविकुंभ' जैसी अच्छी पत्रिका के मार्च 2017 के अंक को पढ़ने का अवसर मिलना अहो भाग्य समझता हूं। पत्रिका परिवार को मेरी शुभकामनाएं।'

## 'कविकुंभ' परंपरा और आधुनिकता का एक विहंगम कोलाज : राग

अलवर (राजस्थान) से गीतकार राम चरण राग लिखते हैं- 'कविकुंभ का अप्रैल-मई संयुक्तांक पहली नजर में ही ध्यान आकृष्ट करता है। परम्परा और आधुनिकता का एक विहंगम कॉलाज देखकर मन चकित रह गया है। कवि और कविता पर केन्द्रित इस पत्रिका का हिन्दी रचना संसार में प्रवेश स्वागत योग्य ही नहीं, एक सुविचारित दखल भी है। एक ऐसी पत्रिका, जो कवि की दुनिया को करीब से देखती है और कविता की ताकत और कलात्मकता को आम जन-जीवन से जोड़ना चाहती है। यह कोना पिछले तीन चार दशकों से जो खाली रह गया था, 'कविकुंभ' ने सिर्फ इसे भरा ही नहीं है अपितु साहित्य के एक नये पाठक वर्ग का निर्माण करने की दिशा में एक जरूरी कदम भी उठाया है।'

## बहुत सुंदर, मेहनत साफ झलकती है : राम सेंगर

कटनी, मध्यप्रदेश से जनगीतों के यशस्वी कवि राम सेंगर लिखते हैं- 'कवि कुम्भ' के दोनों अंक मिले। बहुत सुन्दर हैं। आपकी मेहनत साफ झलक रही है। बड़े मन से आपने हमें प्रस्तुत किया है। बड़ा अच्छा लगा। अंक-4 भी सुन्दर है। यह काम निरंतर जारी रहे। इन्ही शुभकामनाओं के साथ।

## पत्रिका 18 राज्यों के साहित्य प्रेमियों की पसंदः संपत लोहार

अहमदाबाद, गुजरात से हास्य-व्यंग्य के कवि सम्पत लोहार लिखते हैं- 'कवि कुम्भ' का अप्रैल-मई मिला। सुंदर कलेवर में इस अंक के संपादकीय के शब्द गहरे आत्मविश्वास का संकेत देते हैं- 'शब्दों की हिफाजत के लिए जहां तक हो सके, हर असंभव पर पार पाने का समवेत प्रयास करते रहना है।' आज जब वाचन परम्परा की ओर अपेक्षाकृत रुझान कम होता जा रहा है, साथ ही सुधी पाठकों के पास स्तरीय व गुणवत्तायुक्त हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का नितांत अभाव है, ऐसे में मुझे लगता है, कविकुंभ में उस निर्वात को भरने की क्षमता है। तभी तो इतने अल्प समय में यह पत्रिका 18 राज्यों के साहित्य प्रेमियों की पसंद बन चुकी है। पत्रिका में नवोदित कवि-साहित्यकारों को भी यथोचित स्थान मिले।'

# कविकुंभ

## विज्ञापन रेट कार्ड

| | |
|---|---|
| आवरण अंतिम पृष्ठ रंगीन | रु. 1,00000 |
| आवरण पृष्ठ दो रंगीन | रु. 50,000 |
| आंतरिक पूर्ण पृष्ठ रंगीन | रु. 35,000 |
| आंतरिक अर्द्ध पृष्ठ रंगीन | रु. 20,000 |

**कविकुंभ में विज्ञापन प्रकाशित कराने के लिए:**
ई-मेल kavikumbh@gmail.com
**अथवा**
मोबाइल नंबर: 7250704688/ 8958006501
पर संपर्क किया जा सकता है।

## सदस्यता शुल्क

| | |
|---|---|
| डाक शुल्क सहित वार्षिक | रु. 360 |
| डाक शुल्क सहित त्रिवार्षिक | रु. 1100 |
| डाक शुल्क सहित पंच वार्षिक | रु. 2100 |
| डाक शुल्क सहित आजीवन | रु. 10,000 |

**त्वरित सदस्यता प्रक्रिया के लिए:**
ई-मेल kavikumbh@gmail.com
**अथवा**
मोबाइल नंबर: 7250704688/ 8958006501
पर संपर्क किया जा सकता है।

18 जून, महारानी लक्ष्मीबाई बलिदान दिवस

RNI No. UTTHIN/2016/71922

जाओ रानी याद रखेंगे, ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जागावेगा स्वतंत्रता अविनासी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी,
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मदार्नी वो तो झाँसी वाली रानी थी।

# कविकुंभ

## महान वीरांगना को शत-शत नमन

BEING WOMEN
Be a complete women...

रंजीता सिंह
राष्ट्रीय अध्यक्ष, बीइंग वूमेन